तसवीरें

लेखक
चन्द्रशेखर मिश्र

प्रकाशक
लोकमत पुस्तकमाला
दारागंज प्रयाग

मुद्रक—प्रतापनारायण चतुर्वेदी, भारतमाता प्रेस, दारागंज—प्रयाग।

सन १९४३
मूल्य १॥)

प्रकाशक—लोकमत पुस्तकमाला दारागंज—प्रयाग।

दो शब्द

जब मैं हिन्दी-संसार के सम्मुख यह 'तसवीरें' उपस्थित कर रहा हूँ, तब मुझे पता नहीं, हिन्दी पाठकों द्वारा इनको कैसा अपनाया जायेगा। अपने इन sketches को संग्रह रूप में हिन्दी संसार के सामने रखने का यह पहिला प्रयास है। इनका भविष्य अज्ञात है। हिन्दी उपन्यासों और कहानियों के सम्बन्ध में तो पाठकों की अभिरुचि का स्पष्टीकरण हमेशा मिलता रहा है, लेकिन चूँकि स्कैचों का विकास हिन्दी में नहीं के बराबर है इसलिए इनकी लोकप्रियता के सम्बन्ध में अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मेरे बहुत कम साथी हैं, जो 'स्कैच' लिखते हैं। अंग्रेजी साहित्य में स्कैचों का स्थान बहुत ऊँचा है। और कहानियों आदि से कहीं अधिक चाव से स्कैचों को पढ़ा जाता है। स्कैचों के कथासाहित्य की सीमा में होते हुए भी, इनका क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। 'कथा-साहित्य' का इसे अतिसूक्ष्म स्वरूप भी कह सकते हैं। जिस प्रकार उपन्यास का लघुरूप यदि कहानी है, तो स्कैच उसमें भी लघु-रूप है, जिसमें लेखक की कहानी से भी अधिक सीमित क्षेत्र में किसी एक भावना को साकार रूप देना पड़ता है। जहाँ उपन्यास साहित्य में लेखक अपनी लेखनी को लम्बे चौड़े दायरे में चला सकता है। जीवन, मरण, दिवस मास और वर्ष यहाँ तक कई पीढ़ियों तक के चित्र चित्रित करता चला जाता है! अपनी एक एक बात को समझाने के लिए पृष्ठ के पृष्ठ रंग देता है, वहाँ कहानी-कार अपनी बात संक्षिप्त रूप में उपस्थित करता है! उसे इतने लम्बे लम्बे sketches देने का अधिकार नहीं है! फिर भी वह स्कैच लेखक से कहीं अधिक स्वतन्त्रता के साथ अपनी लेखनी का उपयोग कर सकता है! वह अपनी बात खुद समझा सकता है। लेकिन स्कैच लेखक को अपने समस्त भावना-विश्व, बिना स्थान, काल और गति परिवर्तन किये एक ही गति में साकार बना देना पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है

कि वह अपनी समस्त सर्जना शक्ति को अति रूप में, सूक्ष्म रूप में केन्द्रित कर उसे 'सचित्र-भाषा' में व्यक्त करे। और जब पाठक उन्हें स्वयं साकार अनुभव कर लेता है, वही स्कैच लेखक की सफलता है। यहाँ लेखक की लेखनी, तूलिका बन जाती है।

स्कैचैज़ की परिभाषा के सम्बन्ध में हिन्दी संसार में बड़ा मतभेद है। स्कैचों की अभी तक ठीक ठीक परिभाषा ही हिन्दी में नहीं बन पाई है। बहुत से लेखकों को मैंने देखा है जो केवल नाममात्र की नवीनता लाने के लिए छोटी कहानियों को ही स्कैच, शब्द चित्र, रेखा चित्र, भावना चित्र, आदि ऐसे ही नाम दे देते हैं, जिनका स्कैच लेखन से जरा भी सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। देखा तो यहाँ तक गया है कि पूरी कहानी जिनमें समय, काल, स्थान, पात्र सभी बदलते रहते हैं, स्कैचों की परिभाषा के विरुद्ध जबर्दस्ती स्कैचों नाम से लिखे जाते हैं। यह एक बड़ी भारी गड़बड़ी है जो दूर होनी चाहिए।

स्कैचैज़ की हिन्दी परिभाषा के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। कुछ लेखक उन्हें रेखा चित्र, कुछ 'शब्द चित्र' और कुछ 'भावना चित्र' नाम दे देते हैं। लेकिन यह कोई भी नाम स्कैच की परिभाषा में फिट नहीं बैठते हैं। स्कैच एक स्थिर चित्र है, चाहे वह घटना चित्र हो, भावना चित्र, अथवा किसी व्यक्तित्व का चित्र इसीलिए इन प्रचलित शब्दों के होते हुए भी मैंने इन स्कैचों के संग्रह को 'तसवीरें' नाम देने की धृष्टता की है, जो मुझे अपेक्षाकृत अधिक सुबोध और सरल प्रतीत होता है। ये तसवीरें तो हैं ही, एक तूलिका से अंकित होती है और ये हैं लेखनी से अंकित!

स्कैचों के सम्बन्ध में निवेदन करते हुए यह अक्षम्य भूल होगी यदि मैं यहाँ श्री भुवनेश्वर प्रसाद को भूल जाता हूँ, जिन्होंने sketches के सम्बन्ध में मुझे दीक्षा प्रदान की।

२६ जून १९४१

Dokeria

भुवनेश्वर

जिसके प्यार की अब धुंधली-

सी स्मृति भर शेष है,

"बाबूजी"

को

शेखर

विषय-सूची

क्रमः—	पेज
१—रुपये का संगीत	१
२—अन्धकार	१७
३—तापमान	२९
४—शासन की गति	४१
५—रेलवे प्लेटफार्म पर	५७
६—युद्ध के बादल	१०९

रुपये का संगीत

रुपये—चाँदी के चमकदार टुकड़े !

गोल-गोल, सुन्दर-सुन्दर ।

मशीन से निकलते हुए, तप्त—लाल-लाल !

टकसाल की अभेद्य दीवारों से टक्करें मार कर, हाथ में गूँजती हुई, उनकी खन्-खन्, खन्न्—खन्न् ध्वनि !

चमचमाती रुपयों की ढेरियाँ—उन्हें बटोरते हुए मजदूरों के कठोर काले-काले हाथ, बच्चों के सुकुमार कोमल हाथ और औरतों के सुहाग भरे हाथ ।

रुपये गा रहे थे, रुपये हँस रहे थे·····

उन मजदूरों की आँखें, सिक्कों की चमकती ज्योति पर, अटकी-सी, भूखी-सी गड़ी थीं, जिन्हें मजदूरी में महीने में उनमें से चन्द टुकड़े मिलते हैं और एक जून रोटी के वैसे ही टुकड़े—

वे हजारों जोड़े आश्चर्य भरी आँखें, मौन भाषा में पूँछ

रही थीं—'बोलो-बोलो, तुम कहाँ चले जाते हो, हमारे हाथों से निकल कर हँसते-गाते, इठलाते से ? हम निर्माणकर्ता—'

लेकिन वे चाँदी के टुकड़े गूँज रहे, खन-खन खनन खनन, एकही स्वर में, एकही लय में—

× × ×

बैन्क के काउण्टर पर·····

रुपये नाच रहे थे·····खन्-खन् खजान्ची के हाथों में, उसकी अंगुलियों की टकोरों पर उछल रहे थे, ठन्-ठन, ठनन-ठनन्·····

अमीरों की जेबों में, सुन्दरियों के बटुओं में और चपरासियों के कन्धों पर रुपये चल रहे थे—तेजी से, सरपट, मोटरों और ताँगों पर, साइकिलों और रिक्शाओं पर—रुपये दौड़ रहे थे, बैन्क से निकल कर।

खजान्ची की आँखें चमक रहीं थीं—अपनी शान पर। काउण्टर पर आ लगा, सुन्दर एक गोरा हाथ, पतली नाजुक-सी अंगुलियों में दबा हुआ नीला चैक। खजान्ची ने रुपये निकाले और गिन दिये, सुन्दरी की हथेली पर। सतृष्ण युवती की ओर निहारा, आँखें चार हुईं। युवती मुस्करा दी। खजान्ची भी आँखों में मुस्कराया·····रुपये में प्रेम है क्या ? प्रेम का देवता—उसी समय खन् खन् की ध्वनि के साथ जा छिपा रमणी के मनीबेग में, हँसता हुआ—रुपया प्रेम का देवता !

दूसरा हाथ आ लगा काउण्टर पर मिल मालिक अमीर का—कलाई पर सोने की घड़ी, अंगुली में हीरे की नगदार अंगूठी। खजान्ची ने हाथ पर रुपये गिन दिये, परिचित-सा भाव भर आँखों में।

हीरे वाली अंगूठी की ठोकर लगी, रुपया ठन्न्-सी आवाज कर उछल पड़ा। अंगूठी के हीरे पर कांचित हो दे मारा सिर अपना। जैसे रुपया लांछन भर कह रहा था—

'तू मेरी खरीदी है!'

सेठ ने लापरवाही से भर लिया रुपयों को थैली में, वजन का अनुभव कर गर्व-रेखा खिंच सी गयी सेठ के चेहरे पर। रुपया चीख उठा—'बदमाश! शोषक!!'

खजान्ची ने घूरा, आँखें फिर चार हुईं। विनय भरा नमस्कार निकल पड़ा सेठ जी की वाणी से! खजान्ची फिर मुस्कराया·····रुपये की प्रभुता·····?

एक हाथ फिर आ लगा काउण्टर पर, चपरासी का साँवला-सा, ठिठुरा-सा वृद्धा हाथ।

नाक-भौं सिकोड़ कर खजान्ची ने देखा चपरासी को—'तनख्वाह चाहता है?'—आँखों से पूँछा।

लेकिन उसकी आँखें लगी थीं खजान्ची के आस-पास बिखरी हुई रुपयों की ढेरियों पर, प्यासी-सी—

खजान्ची ने दस रुपये फेंक दिये भीख-से·····आँखों में उपेक्षा भर! बुड्ढे की अंगुलियों पर रुपये फिर बज उठे—

'ठन्-ठन्, ठनन् ठनन् ।' काला-सा एक रुपया फेरते हुए चपरासी बोल उठा—'इसे बदल दीजिये ।'

'नहीं अच्छा है·····अन्धा है, दिखता नहीं है क्या ? अभी से आँखें बुढ़ा गईं !'—खजान्ची तमक उठा !

चपरासी पी गया बुढ़ापे के व्यङ्ग को, दब गया बिल्ली-सा । कमाई के दस रुपये जा छिपे उसकी फटी पगड़ी के छोर में !

बुड्ढा सलाम कर चल पड़ा, खजान्ची गर्व-से सिर हिला हँस पड़ा·····रुपये का शासन·····?

रुपये बज रहे थे, काउण्टर पर, तिजोरियों में, इधर-उधर बिखरे-से, ठन्-ठन्, ठनन-ठनन ।

\+ \+ \+

बाजारों में·····

बड़ी-बड़ी दूकानों में, रुपये बरस रहे थे । गोल-गोल, चाँदी के चमकदार टुकड़े दौड़ रहे थे, इधर से उधर टकरा रहे थे—अमीर-गरीब, भिखारियों और मजदूरों से ।

वह लंगड़ा भिखारी लकड़ी के सहारे खड़ा चिल्ला रहा था—'एक पैसा, एक पैसा, बाबूजी एक पैसा ।'

टीन के प्याली से कटोरे में एक अधेला बज रहा था—'टन-टन'—वह अधेला भी भिखारी की आवाज की तान पर 'बाबू जी, एक पैसा !'

'लंगड़ा हूँ बाबू जी एक पैसा !!'

'भूखा हूँ एक पैसा !!'—नाच रहा था टीन के कटोरे में।

लेकिन पैसा चला जा रहा था, लोगों की जेबों में और पनीबेगों में, रमणियों के बटुओं में, भिखारी की आवाज पर व्यङ्ग-सा कसता हुआ।

'बाबू जी एक पैसा ?'—भिखारी ने अधेला बजाते हुए, एक अधेड़ पगड़ीधारी सेठ के मार्ग में हाथ बढ़ा कर कहा !

'पागल ! बेवकूफ ! ! देखता नहीं—पैसा-पैसा, क्यों कान खाता है ? पैसा बोल रहा था !

भिखारी कुछ आगे बढ़ा, [illegible]। अपटूडेट हैट-धारी बाबू के सामने, कटोरे में अधेला बजाता हुआ बोल उठा—'बाबूजी एक पैसा।'

'पैसा नहीं है—दूर हट ?' युवक ने कुछ कदम दूर हट मुंह फेर कर कहा।

'होगा,—बाबू जी तुम्हारा भला हो।'

'नहीं है, कह दिया नहीं है !;.....मोटर बस आयी, युवक लपक कर चढ़ गया बस पर, बैठ गया सीट पर ! भिखारी ने फिर वही हाथ का कटोरा खिड़की की ओर बढ़ाया—'अजी, बाबू जी, तुम्हारा भला हो, एक पैसा।'

'नहीं है बाबा, जान छोड़ !'—जेब से एकन्नी निकाल कर कण्डक्टर के हाथ पर रखते हुए युवक ने फिर दुहराया !

भिखारी आश्चर्य भरा रह गया और रुपये बज उठे बाबू

के मनीबेग में—'खन्-खन्, खनन्-खनन्'—ध्वनि के साथ! भिखारी की आँखों ने चोरी सी पकड़ी।

रुपया झूठ बोल रहा था—

+ + +

और उसी सड़क पर—

रिक्शाकुली ढाई मन के सेठ जी को अपने कन्धों पर लादे, फटी-सी बनियाइन पहिने, कमर में धोती का एक टुकड़ा लपेटे, सरपट रुका। फिसल कर गिर पड़ा। घुटनों में चोट लगी। सेठ जी लड़खड़ाये! उतरते हुए चिल्ला उठे—'नालायक! बेवकूफ!!'

फिर चोट लगी देख कर, आँखों में दया की महानता भर, फेंक दी कुली की हथेली पर दो अन्नियाँ, इकन्नियाँ आपस में टकराकर बज उठीं,—'खन्-खन्।'

'चोट कुछ ज्यादा तो नहीं लगी?' फूटे घुटने की ओर देख कर, इकन्नी और गिरी कुली की हथेली पर—

'नहीं' कुली की आँखें चमकी इकन्नियाँ देख कर—सारा दुख दबा कर बोल उठा! लेकिन पीठ फेरते ही घाव को सहला कर रिक्शा कुली चीख उठा।

'अब कैसे मजदूरी करूँगा—आह!'····कुली के मुख

से साँस के साथ शब्द फूट निकले। हकलियाँ हथेली पर, लेकिन वह रो रहा था,—रुपयों के आंसू·····

फिर धोती से पट्टी का टुकड़ा फाड़, घुटने पर बाँध, रिक्शा के हेल्प पकड़ उठ बैठा।

'पैसे तो चाहिए ही।'—तीन आने अन्टी में बांध कर, फिर दौड़ पड़ा, बाजार में, सड़क पर, चमचमाती धूप और जलती दोपहरी में!

हर बार वह सवारी उतार कर, अण्टी के पैसों की वृद्धि देखता और फिर दुगने उत्साह से दौड़ पड़ता। घुटने की पट्टी खून के साथ जम कर चिपक गयी थी। बीच बीच में उसे भी सहला लेता। वह दौड़ रहा था गलियों और कूचों में, बाजारों में, लम्बी चौड़ी सड़कों पर। अण्टी में सिक्के बज रहे थे, उसकी मानवी शक्ति का पूंजीभूत रूप—मानों खन्-खन्-खनन्-खनन्।

आखिरी सवारी उतार कर रिक्शे वाले ने पन्द्रह आने अन्टी से निकाल कर प्राप्त किया चमकदार रुपया! उसकी आंखें भी चमक उठीं! पहले हथेली पर, फिर जमीन पर और अन्त में पत्थर पर बजाया, रुपया हर बार बोल उठा—'ठन्-ठन' ठन्न्-ठनन्।—उसी के साथ जैसे रिक्शा कुली का हृदय भी उल्लसित हो झंकार उठा। चल पड़ा गैरेज की ओर! जैसे ही रिक्शा रख कर बाहर निकला, तख्त पर बैठे ठेकेदार ने कहा—

'ला, चार दिन का किराया ?'

'आज तो नहीं है, सेठ दिवाली बाद !'—मजदूर ने जान छुड़ा कर एक पग आगे बढ़ते हुए कहा !

'दिवाली के बच्चे !'—ठेकेदार की तेज निगाहें जा पड़ीं उसकी उठी अगली पर। लपक कर छीन लिया रुपया ! फिर उसे हाथ पर बजाते हुए बोल उठा—

'रुपया कमाया है, फिर भी किराया नहीं देना चाहता बदमाश !!'

'रुपया काठ की सन्दूकची पर जा गिरा ठन्न से और फेर चला गया धीमी-सी आवाज कर पेटी में ! कुली के प्यासे थके से नेत्र ताकते भर रह गये। रुपये की आवाज में व्यंग का सा अनुभव हुआ। कुली की दोनों आँखें भर आईं—

'रुपया ? हाय रुपया ??'—उसकी हर सांस मानों चीख रही थी !

रुपये का प्रलाप.....

रुपया ठिलठिला रहा था, ठेकेदार की तिजोड़ी में !

+ + +

बिजली की बत्तियों और दीपों के भिन्न भिन्न प्रकाश में, रुपया उमड़ा पड़ रहा था। हर ओर शहर के कोने-कोने में।

उस पूंजीपति ने अपनी तिजोरियाँ खोल दीं। हजारों चाँदी

के टुकड़े ढेरियों में, लक्ष्मी के सामने बिखेर दिये—रुपया हीरों और जवाहरातों के बीच मुस्करा रहा था। सेठ उसकी पूजा कर रहा था। चाँदी के उन चमकते हुए टुकड़ों को अर्चना कर हाथ जोड़ रहा था। रुपये उस प्रखर-प्रकाश में व्यंग से टिलटिला पड़े— शायद पागलपन पर, पूंजी की लालसा पर.....

दीवाली की सजावट में, बिजली की जगमगाहट में आतिशबाजी की चमक दमक में, गलियों सड़कों और बाजारों में चारों ओर रुपया अट्टहास कर रहा था—अपने स्वर में झङ्कार रहा था। सभी के कानों में उसका स्वर गूंज रहा था।

रुपया अपनी सङ्गीतमय झङ्कार लिए गूँज रहा था, उस शराब की दूकान और जुआरियों के जमे हुए अड्डे में—

बन्द कालर का सफेद जीन का लाम्बा सा कोट पहिने वह पारसी अपनी काली शराब भरी आँखें मटका-मटका कर, फटा-फट एक के बाद एक बोतलें खोल रहा था। शराब की गैस भरी बोतलों के कार्क उस सकरी दूकान की छत और दीवालों से टकरा कर कमरे में इधर उधर बिखर रहे थे और ठीक उसी तरह रुपया उसके काउण्टर पर चला आ रहा था—खिलखिलाता, ठनठनाता। उसके साथ पारसी भी मुस्करा रहा था।

'जानीवाकर', 'ह्वाइटहार्स' आदि शराब के नामों की आवाजें आ रहीं थीं, शराबियों के बदबूदार मुखों से उनकी जेबों का रुपया उछल कर निकल भागने को बेचैन था। और

वह बरसात की बूँदों की तरह टपक रहा था—पारसी के काउण्टर पर.....

और रुपया ठिलठिला कर हँस रहा था लोगों को अपनी पागल बना देने की शक्ति पर।

दूकान के दूसरे कोने में—

उस बड़ी मेज के चारों ओर—

पन्द्रह बीस आदमियों में रुपया घूम रहा था।

हाँ, घूम रहा था पूरी तेजी से—ताश के पत्तों के सहारे।

रुपये टेबुल पर बरस रहे थे, और तीन-चार मिनिट बाद, एक जोड़ा हाथ रुपयों की उस ढेरी को बटोरता दिखाई देता। उसके साथी हर्ष से चीख उठते, जब वह उन्हें बटोरता।

रुपये फिर जेबों से निकल कर फर्श पर गिरते और फिर किसी तीसरे के हाथ जाती हुई, वह रुपयों की चमचमाती हुई ढेरी। उस समय प्रसन्न और उदासीन भावों की चेहरों पर अजीब-सी धूप छाँह! रुपये की हार जीत के साथ चेहरे का रंग बदल रहे थे। और रुपये इस हाथ से उस हाथ में भाग रहे थे, अपनी सङ्गीतमय झङ्कार लिए—'ठन्-ठन्, ठन्न् ठनन्।'

+ + +

'मैं तुम पर जान कुर्बान कर सकता हूँ, रश्के!'—रुपये के बल पर वह बोल रहा था!

चुस्त रेशमी शेरवानियों में बंदे फंदे अमीरों के अय्याश बेटे! काली शेरवानी पहिने हुए उस युवक ने नर्तकी की आँखों में आँखें पिरोते हुए कहा।

'और मैं·····?' दूसरे ने आवाज़ कसी! पहिले ने आंखें निकाल कर दूसरे की ओर देखा। रश्के, नर्तकी की आँखें क्रीड़ा का अभिनय लिए झुक गयी। उसके गोरे गालों पर क्षण भर के लिए सुर्खी दौड़ गयी!

और तभी इस अदा पर, प्रेम की कीमत में अमीर बेटे की जेब से निकल पड़ा मनीबेग। उसे हाथ में ले कर उसने हिलाया—रुपये अट्टहास कर उठे, नर्तकी के बिजली की बत्तियों के प्रकाश में जगमगाते लास्यपूर्ण कोठे पर—और उसी अट्टहास के साथ, नर्तकी ने नीची दृष्टि किये अधरों पर मुक्तहास बिखेर दिया। मस्ती की लहर-सी झूम गयी कोठे पर, एक साथ दर्जनों सिर हिल उठे! साथ ही साथ अनेकों मनीबेगों में रुपये खनखना उठे। प्रेम का मूल्य चुकाने के लिए—बेचैन रुपये!

और तभी नर्तकी के कण्ठ से वाक्यों की ध्वनि और घुंघरुओं की झंकार के साथ गीत का स्वर फूट पड़ा—

'सांवलिया मन भाया-रे·····!

स्वर के साथ सब के सब 'वाह-वा' कर झूम उठे मस्ती में, रुपये तड़प उठे अचकनों और मनीबेगों में, खनखनाहट की ध्वनि के साथ !

किसी के हाथ में दो, तो किसी के हाथ में दस का नोट, और वह अमीर युवक दो अंगुलियों पर नचा रहा था सौ रुपये का नोट ।

नर्तकी ने और भी मस्ती के साथ गाया, आँखों में कटाक्ष भर सौ रुपये का नोट जाकिट की जेब के हवाले किया । रुपया नर्तकी के वक्ष-स्पर्श की मादकता में बह गया ।

रुपये ठनकते, इठलाते, नर्तकी की जाकिट की जेब में समाते जा रहे थे । वे उसके जेब में नाच रहे थे—घुंघरुओं की थाप के साथ वे अपनी संगीतमय झङ्कार नर्तकी की जेब ज्यों-ज्यों भारी हो रही थी, त्यों त्यों वह और भी गतिशील हो नाच रही थी । उसकी प्रत्येक गति पर रुपये बरस रहे थे ठन्-ठन्कर—सब बेहोश मदहोश झूम रहे थे । कोठे की दीवालें विकृत अट्टहास से फटी सी जा रहीं थीं ! रुपये नर्तकी के यौवन स्पर्श की मादकता में डूबे-से जा रहे थे—रुपये हँस रहे थे—अपनी संगीतमय झंकार लिए नाच रहे थे—

नर्तकी के यौवन की मादकता का स्पर्श कर, शराबियों के हाथ का खिलौना बन, जुआड़ियों के बदलते रंगों को देख कर, अमीरों के पागलपन पर, कुली की कटुता पर व्यंग कस, बैन्क के खजान्ची के गर्व पर, अथवा अपने निर्माणकर्ता

मजदूरों के आश्चर्य पर, रुपये नाच रहे थे ! रुपये अट्टहास कर रहे थे, अपनी सत्ता, अपने गौरव, अपने साम्राज्य पर ?

चाँदी के गोल-गोल चमकदार टुकड़े टकरा रहे थे, इधर-से-उधर, बाजारों गलियों में—सड़कों पर, मोटर, ताँगों और रिक्शाओं में रुपये दौड़ रहे थे।

बैंक के काउण्टर पर, रमणियों के बटुओं में, अमीरों की तिजोरियों में, गरीबों की अण्टियों में रुपये का सङ्गीत गूँज रहा था।

अन्धकार

२

दीपावली के झिलमिल प्रकाश में विशाल दिल्ली की जगमगाती सड़कों पर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं पर लाल-हरे, नीले पीले विद्युत-दीप झिलमिला रहे थे। किन्हीं प्रासादों पर लगीं सर्चलाइट की रोशनी, आकाश के तिमिरावरण को प्रकाशित कर रही थीं!

विराट जन समूह इक्कों और तांगों में भरा हुआ चांदनी चौक की रोशनी देखने दौड़ा चला जा रहा था। बहुत सी दौड़ती हुई बसों और ट्राम गाड़ियों में झाँक कर देखा, लोग भेड़ बकरियों की तरह उनमें ठिले थे। प्रकाश देखने का इतना लोभ। मानो आज शताब्दियों से इस मानव प्राणी ने प्रकाश नहीं देखा, अतः यह उससे आज एकबारगी सदा के लिए प्रकाशित हो जाना चाहता है।

हम दोनों पैदल ही सड़क पर चल रहे थे—उस जन-समूह को चीरते हुए, जो बिजली की बत्तियों की रंगबिरंगी अठखेलियों

को ठिठक-ठिठक कर देखता हुआ मंथर गति से चांदनी चौक की ओर बढ़ रहा था।

फतहपुरी का वह गाडोदिया मार्केट आज इन्द्रभवन सा जगमगा रहा था। अनूप ठिठक गया, वहीं सामने। मैं सोच रहा था—आज का यह मानव हृदय में प्रमाद अन्धकार भरे हुए, किस प्रकार 'प्रकाश' की ओर दौड़ रहा है।

साथी अनूप ने पूँछा—"जानते हो इस मार्केट का मालिक कितना धनी है? आज उसने अपने खजाने इस प्रकाश में खोल दिये हैं।"

'ऊँह, वह तो उसकी तिजोड़ी में बन्द है, आज वह उसे क्षणिक प्रकाश दिखला कर चिर अन्धकार में सुला देना चाहता है।'—मन ही मन मैंने प्रत्युत्तर दिया और हाथ पकड़ कर अनूप की ओर घसीट कर ले गया!

अब हम दोनों चांदनी चौक में जा पहुँचे। बिजली की तेज रोशनी में आज यह बाजार, अपनी समृद्धि खोल कर पागल-सा हो रहा था और लाखों जोड़े आँखें उसे साश्चर्य निहार रहीं थीं। कोई प्रसन्न हो रहा था, किसी में चाह थी, तो किसी के हृदय में वह चकाचौंध और टीस पैदा कर रही थी।

वह जौहरी आज अपनी दूकान को कुबेर के खजाने-सा सजाए हुए था। बिजली से प्रकाशमान् लक्ष्मी का भव्य चित्र। मस्तक पर घूम रहा था। उसी प्रकाश में

जौहरी दूकान के बाहर तख्त पर, मलमल का कुरता, जगमगाते हुए हीरे के बटन और जरी की दुपल्ली टोपी पहिने, दोनों हाथों से लक्ष्मी का प्रसाद बाँट रहा था। मिठाई की थालियों पर उसके हाथ कितनी तेजी से चल रहे थे। आज वे कितने उदार हो उठे थे? लेकिन जौहरी की आँखों में विचित्र परख थी। बाबुओं और सभ्य पुरुषों के सामने उसकी आखें बढ़ उठीं। एक नजर वह लोगों की वेष-भूषा की ओर देखता, युवतियों की विद्युत्प्रकाश में बिखरी हुई सुन्दरता पर उनकी दृष्टि अटक जाती, तब एक मुस्कराहट के साथ उसका हाथ मिठाइयों के दोने सहित आगे—बढ़ जाता।

उसके पीछे दरिद्रता के अग्रदूत कितने ही भिखमंगे और मजदूर थे, जो चार टुकड़े मिठाइयों के पाने के लिए खींचातानी कर रहे थे। उन पर वह पुरबिया भैय्या डंडा लिए शासन कर रहा था।

मूंछों पर हाथ फेरते हुए वह चिल्ला रहा था—"सीधे बैठे रहो बदमाशों, अगर इधर कदम बढ़ाया तो सर तोड़ दूँगा!"

एक दो को उसने धक्का मार कर बिठाल दिया। अनूप ने मिठाई का एक दाना ले लिया और दो चार टुकड़े मुंह में डाल कर बोला—"वाह। लो तुम भी लो।"

मुझे दोने की मिठाई में, पूंजीवादी के हाथ के कीड़े रेंगते दिखाई दिये। जी में आया प्रसाद का दोना छीन कर पैरों से रौंद दूँ, जिसमें मानवता का अपमान भरा पड़ा है। लेकिन यह अनूप क्या कहेगा?

\+ \+ \+

घंटाघर के पास उस मुदागा मिल की दूकान के सामने बड़ी भीड़ थी ! सभी एक दूसरे के ऊपर पिले पड़ रहे थे । अनूप ने अपने सबल हाथों से घुसने का रास्ता बना ही लिया ।

दूकान की 'शो-विन्डो' में बिजली के पुतलों का तमाशा हो रहा था । यंत्र-बल से परिचालित गुड्डे करिश्मे दिखा रहे थे । बच्चे आगे खड़े हो कर, मारे खुशी के तालियाँ पीट रहे थे ! आज लड़कों को भी अपने ऊपर गर्व था !

उनके पीछे एक बच्चा खड़ा था, जिसके बाल कड़ुए तेल से तर थे, मुंह चुपड़ी हुई चिकनाई से चमक रहा था । शरीर से बहुत ओछा लाल रंग का अधमैला सा कोट वह पहिने हुए था । खुले हुए कालर से तेल में चिकटी काली कमीज साफ दिखाई दे रही थी । सिर पर छै-पैसे वाली कागजी टोपी थी । सामने बेन्च पर बैठे हुए उन शुभ्र रेशमी वस्त्रों से परिवेष्टित बच्चों के पीछे खड़ा हुआ वह लड़का भद्दे काले धब्बे की तरह दिखाई दे रहा था ! बेंच की आड़ से वह बार बार तमाशा देखने के लिए सिर उठा रहा था !

सहसा रेडियो खुल पड़ा । बच्चे खुशी से उछले, जिससे हल्की बेंच डगमगा उठी, दो तीन बच्चे लुढ़क पड़े !

बच्चों के क्रन्दन ने दूकान के भीतर बैठे हुए मालिक का ध्यान आकर्षित किया, जो अभी शराब के पैग पर पैग चढ़ा रहा था । वह बड़बड़ाता हुआ दूकान के बाहर निकल आया । लड़के उसकी तेज निगाह से सहम कर रह गये ।

'किसने बेंच गिरायी ?'—उसने कड़क कर पूछा !

लड़के चुप। पीछे खड़े हुए भीड़ से लड़के को देख कर उसका खून खौल गया ! जरूर इसी ने बदमाशी की होगी।

'देखो कैसा चुपचाप खड़ा है ?'—वह बड़बड़ाया और लपक कर बच्चे के कान पकड़ कर ऐंठते हुए 'चट्-चट् चट् तीन चार चांटे जड़ दिये !

निकल बदमाश—निकल निकल ··· ···।

बच्चा भय और मार से चीख उठा। उसका रोना सुन थोड़ी दूर खड़े हुए माँ-बाप (दोनों मिल मजदूर) जो अभी तक सड़क की चहल पहल और वाहनों का कौतुक देख रहे थे, जाग-से पड़े। बाप ने दौड़ कर रोते हुए बच्चे को उठा लिया। दूकान मालिक के हाथ की पांचों उगलियाँ बच्चे के गाल पर चिन्हित हो गईं थीं। चिन्गारी भरी तेज निगाहों से उसने सेठ को देखा।

"क्यों बे, तेरा लड़का है ? बदमाश, देखो साले को, हमारे बच्चों के बीच भेज दिया !"

"अजी ये लोग बड़े चालाक होते हैं। सेठजी को क्या पता ? छोकड़ों की जेब काटना और चोरी करना सिखलाते हैं और खुद खड़े खड़े तमाशा देखते हैं !"—एक शरीफ ने सेठ की बात का समर्थन करते हुए कहा।

इसके बाद भीड़ में से बहुत से उन दोनों पर बौछार कर उठे—"बदमाश, पाजी चोट्टे लफंगे·····"

माँ-बाप अपने बेटे को ले कर एक ओर भागे। लेकिन प्रतिध्वनि अब भी गूंज रही थी—बदमाश, पाजी, चोट्टे—लफंगे.....”

+ + +

चौरास्ते पर—

फव्वारे का पानी बिजली के प्रकाश में रंगीन बन कर आकाश को छूने दौड़ दौड़ रहा था, लेकिन असफल प्रयास हो फिर नीचे गिर पड़ता। आजकल पूंजीपति मनुष्यता के अस्तित्व को भूल कर कितने ऊँचे चढ़ रहा है, क्या उसका भी एक दिन यही हाल होगा ?

पास के सिनेमा पर तो आज जनसमूह टूटा पड़ रहा था। वही समाज जिसके कल के भोजन का ठिकाना नहीं, आज चवन्नी का सिनेमा टिकट प्राप्त करने के लिए, बल पूर्वक खिड़की पर पहुँचने की कोशिश कर रहा था। सिनेमा मैनेजर दरवाजे पर काली सर्ज का सूट पहिने, मूठदार छड़ी को घुमाता हुआ सिगरेट का धुँआँ छोड़ कर आँखों में शराब की गुलाबी लिए अपनी सफलता पर खड़ा खड़ा मुस्करा रहा था। अपने शोषण के परिणाम को देख कर, दीवाली को धन्यवाद दे रहा था। सामने मोटरों की कतार खड़ी थी, जिनमें, सलमें, सितारे और जार्जेट की साड़ियाँ धारण करने वाली बड़े घरों की नारियाँ सवार थीं।

मोटरों की कतार की बगल में, एक रिक्शा सरपट दौड़ता

आ खड़ा हुआ। रिक्शा कुली के माथे से पसीना निचुड़ कर पंजों की राह बह रहा था। उसने दम लेते हुए रिक्शा किंचित वेग से रोका था। रिक्शे में बैठा हुआ युवक—दुबला पतला, शरीर पर सिल्क की काली अचकन, आँखों पर क्रुक्स का सोने की डंडी का चश्मा, सुगन्धित तैल से तर बाल, कपड़ों से सेण्ट की फूटती हुई लपटें—चिल्ला उठा—अबे कैसा अमहक है।'

तेजी के धक्के से युवक कुछ डगमगा गया।

'हुजूर माफ करें'—गले में पड़े चिटके अंगोछे से कुली ने माथे का पसीना पोंछ कर कहा।

'हुजूर के बच्चे—पाँच मिनिट लेट हो गया।'—कलाई पर बंधी सोने की घड़ी के ऊपर निगाह फेंकते हुए युवक ने कहा! और जेब से चार आने पैसे निकाल कर उन्हें भीख की तरह उपेक्षा से रिक्शावाले के हाथ पर फेंकते हुए चल पड़ा।

'हुजूर छै आने ठहरे थे!' रिक्शावाले ने आश्चर्य से चवन्नी की ओर आँखें फाड़ कर देखते हुए, दबी आवाज में कहा।

'नहीं और अब कुछ नहीं—पाँच मिनिट लेट कर दिया।'

'हुजूर मैंने कोई कसर रक्खी?' रिक्शा कुली ने पीले-पीले दाँत निकाल—कातर हो कहा।

'नहीं, नहीं मैं और कुछ नहीं दूँगा?' युवक ने व्यग्रता के साथ गेट की ओर बढ़ते हुए कहा!

अबकी बार रिक्शा कुली ने युवक का पैर छूते हुए कहा—

'रहम करो बाबू जी, मैं गरीब हूँ, आज दिवाली है बाबू जी, रहम करो चार पैसे तेल बत्ती के लिए।'

युवक ने आँखों में आग भर कर कुली को धक्का देते हुए कहा—'हुज्जत करता है ?'

धक्के से अशक्त वह लड़खड़ा कर रिक्शा के पहिए से जा टकराया। रिक्शा की छोटी सी घन्टी घनघना उठी! गेट पर खड़े सिनेमा मैनेजर ने निगाह उधर घुमाई, और तेजी से सीढ़ियाँ उतर कर 'सड़ाक-सड़ाक' कई बेंत उसकी पीठ पर जमाते हुए कहा—'बदमाश, शरीफों के साथ हुज्जत करता है।'

'हुजूर मेरे बच्चे भूखों मर जायेंगे—आज त्योहार के नाम पर रहम करो। चार पैसे तेल बत्ती के लिए'—कुली ने पीड़ा से कराहते हुए कहा।

'तेल के बच्चे! शरीफों के साथ उलझता है, भागता है कि नहीं? नहीं तो अभी पुलिस को·····समझा!'—मैनेजर ने नशे के झोंके में झूमते हुए कहा!

'पुलिस' का नाम सुन कर वह लाल पगड़ी वाला कानेस्टबिल भी चौंका और उसी ओर बढ़ आया। लाल आँखें ले कर मैनेजर और युवक को हिदायत करते हुए वह बोला—'हरामजादे, भागता है कि नहीं, मोटरों के अड्डे पर रिक्शा खड़ा कर रक्खा है—अभी करूं चालान·····!'

'चालान' का नाम सुन कर गरीब का मुंह सूख गया! उसने कातर किन्तु आगभरी दृष्टि से ताकते हुए रिक्शा उठा

लिया और सिनेमा भवन की चमचमाती संगमर्मर की सीढ़ियों पर चढ़ते तीनों को देखा।

सिपाही कह रहा था—'सीधे से कहीं ये पाजी मानते हैं बाबूजी? अगर हम लोग जूतों की ठोकरों से इनकी खबर न लेते रहें, तो ये सिर पर चढ़ जायें।'

मैनेजर ने सिपाही को सैकिन्ड क्लास का दरवाजा दिखा दिया और स्वयं युवक के साथ ही-ही करता हुआ बालकनी की सीढ़ियाँ चढ़ गया!

तिरस्कार से पीड़ित हो कुली ने यह कहते हुए रिक्शा सड़क की ओर बढ़ाया—'हमीं हैं सताने के लिए, सबेरे से····· ओफ··· ।'—मालूम होता था जैसे उसका स्वर भीतर ही भीतर दब गया, लेकिन उसकी प्रत्येक साँस चीत्कार कर रही थी।—तुम्हारे सुख-दुख, ऐश-आराम और पर्व त्योहार में हमीं हैं सताने के लिए! उसकी आँखों में आँसू छलछला आये, न जाने बच्चों की आशामय प्रतीक्षा की याद में या पत्नी की दीवाली मनाने की साध में।

'सब्जी-मंडी चलेगा?'—एक अधेड़ ढाईमन के तोंद वाले बनिये ने दीवाली का सामान फुटपाथ पर लिए हुए आवाज दी। 'नहीं, अब नहीं, बहुत जुत चुका····हां-हां चलिए।' 'दो आने मिलेंगे'—दो अंगुलियाँ नचाते हुए सेठ जी ने कहा।

'सब्जी मंडी दो-आने, और यह सामान, तीन आने दे दीजिएगा! कुली ने सामान के ढेर पर दृष्टि गड़ाये हुए कहा।

'नहीं दो ही आने मिलेंगे।'—सेठ जी ने दुहराया !

'अच्छा दो ही आने सही, तेल बत्ती तो जुटेगी।'—कहते हुए कुली ने मिठाइयों के टोकरे, खिलौनों के बाक्स और आतिशबाजी का ढेर भर सामान रिक्शा में लादा और ऊपर से लादा उस मोटे अधेड़ को ! फिर दौड़ पड़ा चांदनी चौक की दीपावलियों से चमचमाती उस सड़क पर।

तेल बत्ती की चाह में उस मुट्ठी भर हड्डियों के कुली की न जाने कौन सी साध छिपी थी ?

तापमान

६

दोपहर की धूप।

तपती हुई धरित्री, और जलता हुआ आसमान।

झुलसे हुए वृक्ष मूर्छित-से स्तब्ध।

शहर के बाहर मिल की ऊँची चिमनी से उठता हुआ धुआं—ऊपर ही ऊपर उठ कर हल्के बादलों के टुकड़ों को गहरा बना रहा था।

बारह को भोंपू 'घूं-घूं' कर चीख उठा।

मिल के सामने चाय और डबल रोटी वाले, पान वाले, मूंगफली, दालमोठ और गुड़ वाले सेब खोंचों में सजाये अनेकों छोटे-छोटे खोंचे वालों में हलचल सी मची, जो वहीं फाटक के दोनों ओर नीम और जामुन के छोटे दरख्तों के साथ बने छोटे-छोटे वृत्ताकार चबूतरों पर अपने-अपने खोंचे लिए ऊँघ

रहे थे ! उनके हाथों की छोटे-छोटी खजूर की पत्तियाँ मक्खियाँ उड़ाने के लिए शिथिल भाव से हिल रहीं थीं। वे सब एक साथ चैतन्य हो उठे।

भोंपू अभी चीख ही रहा था !

मिल के उस लोहे के फाटक से निकल रहे थे, सैकड़ों हजारों मजदूर टिड्डियों के दल के समान सघन हो कर एक दूसरे को धकियाते हुए उतावले से हजारों मजदूर—झुलसे हुए चेहरे, काले कपड़ों में लिपटे, रुई और धागों के श्वेत तार बालों में उलझे हुए, जैसे सब बालों से बूढ़े हो चले थे। तप्त तमतमाते ताँबे से चेहरों पर आवेगपूर्ण उद्दीप्ति, वे सब फूटे हुए बाँध के वेग के समान तेजी से निकल रहे थे !

फाटक से निकल कर वे सब टूटे पड़ रहे थे, भिनभिनाते खोंचों पर, पैसे का ग्लास भर खाँड़ का शरबत बेचने वाले की दूकान पर ! और वहीं उन छोटे छोटे चबूतरों को घेर कर वृक्षों की छाया में, कोई खड़े खड़े ही तो पजों के बल ही बैठ कर जल्दी जल्दी वह सब चीजें सहज भाव से गले के नीचे उतार कर पेट में पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे थे। आपस में जोर जोर से बातें करने की मशीनों के कोलाहल में जैसे उनकी आदत सी पड़ गई थी। आपस में चर्चाओं का बाजार सा लगा हुआ था।

उस सेब वाले के खोंचे पर लगी लुब्ध भीड़ में वह युवक भी जो अभी अभी ड्रायलर रूम से निकला है, धड़ाम से आ कर

बैठ गया। उसके माथे का पसीना अभी सूख भी नहीं पाया है। चेहरा तमतमाया, आँखें अँगारे-सी, वह तन पर काले रंग का सूट सा पहिने है। उसने बहुत सम्हल कर बैठने की कोशिश की, लेकिन वह बैठा न रह सका। वह पैर फैला कर चित्त लेट रहा। आँखों में अपूर्व उत्तेजक भाव सा भरे।

दूकानदार ने मौका पा कर कनखियों से उसे देखा। फिर एक कागज पर कुछ सेब रख कर हाथ बढ़ाया। लेकिन उस लेटे हुए युवक की आँखों में एक अपूर्व भाव था, वह निहारते हुए भी जैसे कुछ देख नहीं सकता था और जब उसका हाथ न बढ़ा तो दूकानदार ने अपनी लम्बी गर्दन घुमाई—'अरे गोपाल, ले-ले, पैसा न लाये होव, तो हफ़्ता पै दै दीजो।'—यह शब्द दूकानदार के मुंह से रटे हुए, किन्तु सहज लहजे में निकले, जैसे वह रोज अनेकों ग्राहकों से कहता है।

और गोपाल ब्वायलर रूम में भट्टी के साथ सीना भिड़ाये कोयला झोंकने के बाद अब जो बाहर निकला, तो उस निश्चित स्थान तक जैसे स्वप्नावस्था में चला आया था। जरा सी साँस लेने के लिए। उसे सबेरे से बुखार था, भीतर ज्वर और बाहर से ब्वायलर की लपटें और जैसे उसके मस्तिष्क में पहुँच कर केन्द्रीभूत हो गई थीं।

गोपाल जब चबूतरे पर आया, तो उसे इतना ही ख्याल था कि उसने अपने को टिका भर पाया है। उसकी आँखों में ब्वायलर जैसे अब भी तेज लपटें मार रहा था और आँखों के

सामने चिन्गारियाँ सी चटख रही थीं। उन चिनगारियों के बीच मिल की ऊँची चिमनी और उनसे निकला हुआ धुँआँ दिखाई दे रहा था।

वह चेतनाहीन हो कर जैसे एक स्वप्न-सा देख रहा था। मस्तिष्क में जैसे कोई खट-खट हथौड़ा चला रहा है, उसे वह खट-खट ही सुनाई दे रही है। बाहर की दुनियाँ की कोई अन्य ध्वनि जैसे उसके कर्ण रन्ध्रों में प्रवेश नहीं पा रही है।

मिल की ऊँची चिमनी, उसकी लाल ईंटे जैसे उखड़ कर उसके चारों ओर घूम रही है। मस्तक पर भार सा बढ़ रहा है।

हथौड़े की चोटें गुरुतर होती जा रही हैं।

वह घूमती हुई ईंटें उसके सिर से टकराकर मस्तक पर जमती जा रही है और वह गोल ऊँची चिमनी, इतनी विशाल, इतनी शक्तिमान, मीनार सी ब्वायलर रूम के ऊपर ही तो है—हाँ, हाँ, ठीक मेरे सिर पर उसका विकराल मुँह है जिसमें ब्वायलर निरन्तर काला-काला धुँआ भरता रहता है।

"हाँ, हाँ मेरे सिर पर ही तो!"—उसने आँखें फाड़ फाड़ कर उसी स्वप्नावस्था में देखा! सचमुच गोलाकार पीली पीली चिमनी ही सी तो बन रही है मिल की मीनार भी क्रमशः छोटी होती जा रही है और ईंटें तेजी से उखड़ कर हवा में घूमती हुई ईंटे उसके मस्तक पर निर्माण कर रही हैं। वह देखो एक ईंट की, और अब दो ईंट की हो गई।

एक गर्वित उल्लास उसने अपने धधकते हुए अन्तर में

अनुभव किया। मेरे मस्तक पर इतनी बड़ी मीनार ''मिल की चिमनी का निर्माण हो रहा है—जिसके मुख से सहस्रों मजदूरों की शक्ति का पूँजीभूत रूप काला धूम्र निकला करता है—ऐसी शक्तिमान, चिमनी का निर्माण हो रहा है। क्या मैं इसके भार को सम्हाल सकूँगा ?''·····(एक क्षण शून्य)।

"यह क्या ? यह भारी भारी सा क्यों ? भार बढ़ रहा है। अरे मेरे मस्तक पर मिल की चिमनी जो बन रही है मैं उसका आधार जो बना हुआ हूँ। बनने दो इसे। बढ़ने दो इसे,—ऊँची से ऊँची ! इसीसे तो हम सहस्रों का जीवन लगा हुआ है। इतनी लाखों करोड़ों की मिल का प्रतीक यह ऊँची चिमनी ही तो है।·····लो अब पहिली मंजिल बन गई—बनने दो, ऊँची उठती जाने दो, मैं तो हिम्मत बांधे हूँ·····।

"देखूँ इसे कितनी ऊँची है ?

ऊँची-खूब ऊँची ! चिमनी का आधार मैं, मेरा मस्तक कितना सहनशील—मैं जरा देखना चाहता हूँ।—लेकिन, नहीं, नहीं, चलने दो काम, बढ़ने दो चिमनी। मेरे सिर हिलाने से कहीं यह डगमगा न जाये ?—

भनभनाकर चक्कर काटती हुई ईंटें स्वतः ही लगती जा रही हैं—मीनार बढ़ती जा रही है, मिल की चिमनी छोटी होती जा रही है।

वाह रे, मैं। लो दूसरी मंजिल भी बन गई। ओफ्, कितनी ऊँची, आसानी से दिखाई भी नहीं देती। बढ़ती ही

जा रही है। अ-रे-रे-रे मेरा सिर चटख रहा है। थोड़ी साँस ले लूँ, सिर हटा कर—जरा सा सहारा। लेकिन नहीं मैं नहीं हटाऊँगा। कहीं हिल न जाये, इतनी बड़ी मीनार सिर हटाने से गिर न जाये? उठ जाने दो पूरी, मैं इसे आखिरी हिम्मत तक साधे रह सकता हूँ·····(क्षण भर की शृंखला टूटती है।

"साधे रह सकता हूँ·····तीसरी—अब यह चौथी मंजिल तैयार है। बस—इसके बाद अब यह आसमान से जा टिकेगी! सीधी-सीधी उठती जा, बढ़ती जा!"

ओफ् हो-हो! लो जा लगी, कितनी ऊँची है, आखिरी छोर आकाश को चीर गया है जैसे—बन गई, बन गई ओह! सहा नहीं जाता। लेकिन सम्हाले हूँ!—

सर-सर करके बगल से सीढ़ी भी लग गई, वह जादू की रस्सी की तरह जा लगी है चोटी तक। पाँचवीं मंजिल बन गई है और देखो! शाबास मैं इसे सम्हाले हूँ। मिल की चिमनी कहाँ है?

कहीं नहीं।—

सीढ़ी से चढ़ कर मैं इसकी चोटी तक पहुँच सकता हूँ—मीनार न हिले, मेरा सिर चुपके से इसके नीचे से खिसक आये, बस इतना ही तो चाहिए।—

"लो मैं खिसक आया चुपके से, अपने शरीर में से। यह पड़ा हूँ—मैं—मेरा शरीर कैसा है? वाह रे मैं!"

यह मेरी देह है और इस कलूटी देह पर यह कमीज और पजामा कितने पैबन्द हैं?—क्या खब सजता है!

कोई गिने तो इन पैवन्दों को — अब मैं अलग हो कर हर एक चीज देख सकता हूँ। लो मैं चढ़ने लगा और कितनी ऊँची है इसकी आखिरी मंजिल। कैसा आनन्द आ रहा है। मैं ऊँचे चढ़ रहा हूँ सब लोगों से।

यह पहिली मंजिल आ गयी। यह देखो भीतर वाला आफिस और उसकी खस की टट्टीदार खिड़कियाँ दिखाई देती हैं, उन्हीं के भीतर बैठा हुआ तो साला कम्बख्त बड़ा मुन्शी काम के घंटों और मजदूरी में कतर ब्यौंत किया करता है। सामने वह देखो मैनेजर की कलूटी मोटर खड़ी है। सब जैसे इस समय मेरे चरणों में हैं।

यह दूसरी मंजिल भी खूब है! लो यह सामने वाली सड़क कहाँ तक गई है? मैं इसे दूसरे छोर तक देख सकता हूँ। वह देखो मंगली ताड़ी वाले का अड्डा और हमारा मुहल्ला सब कुछ तो दिखाई दे रहा है। ये खोन्चे वाले और सब लोग इन पेड़ों के नीचे कैसे बन्दर से बैठे दिखाई दे रहे हैं। मैं भी कैसा पड़ा हूँ पाँव फैलाये मैंढक-सा।

तीसरी मंजिल से अब मैं सारी मिल और उसके सभी खातों को एक नजर में देख सकता हूँ। उस छोर के क्वार्टर्स, पीछे की रेलवे-लाइन, स्टेशन और माल गोदाम भी साफ दिखाई दे रहा है!

बस अब एक मंजिल और बाकी है। इस समय मेरी नजर की दौड़ से कोई होड़ नहीं लगा सकता! सारा शहर मेरी

नजर की सीमा के भीतर है, मैं चाहूँ तो इसे अपनी बाँहों में समेट सकता हूँ ! यह मिल इसके इतने बड़े बड़े खाते, जिनमें हजारों मजदूर काम करते हैं इन्हें मैं एक पंजे की छाया में ढक सकता हूँ ! सब कुछ टेबिल पर बने हुए माडल से अधिक बड़ा नहीं है। मैं ऊपर हूँ—सब से ऊपर, सब से शक्तिवान् !

ऊँचाई के सर्वोच्च शिखर पर ! कितने ऊँचे ? यह छोटे छोटे रंगीन मकान अट्टालिकायें मेरे चरणों में नदी किनारे के छोटे छोटे पत्थरों के समान बिखरे हैं। और यह नीचे के सब लोग कोयले के जले हुए टुकड़े से बिखर रहे हैं, जिसकी सारी स्फूर्ति, सारा सत्व खींच कर जैसे मिल रूपी दानव ने इन्हें अपने मुख से उगल दिया हो ! और मैं भी तो देखो कैसा पड़ा हूँ कोयले के नन्हें से ढेले के समान ..... नहीं मेरे मस्तक पर इस विशाल मीनार का भार अवलम्बित है। इस वैभव की मीनार का आधार-मैं-कितने जतन से इसे सम्हाले हूँ। मेरे जरा भी डगमगाने से यह वैभव की मीनार भूकम्प के वेग से ढह कर भूमिसात हो जायेगी ! फिर भी ऊँचाई के सर्वोच्च शिखर पर हूँ अपने को सम्हाले हूँ। चाहूँ तो इस आसमान को छू लूँ। सूरज को पकड़ लूँ।—लेकिन यह इतना गरम क्यों ? ओह मैं जला जा रहा हूँ ! इस चोटी पर अपने मकान, शहर, मुहल्ले और इस मंडराती हुई भीड़—सब से ऊपर ! ये सब मोटर लारियाँ कारें और रेल गाड़ियाँ बच्चों के खिलौने से हैं। मैं इन्हें गेंद की तरह पैरों से खेल सकता हूँ।.....

यह कौन चीख उठा ? क्या भोंपू·····यह क्यों चीखा—क्यों चीखा ?·····जी।

यह क्या मैं लड़खड़ाया···

मैं मैं गिरा गिरा—

दोपहर की छुट्टी समाप्त होने का भोंपू फिर चीख रहा था और गोपाल के साथी उसे हिला-हिला कर जोरों से चेहरे पर हवा कर बेहोशी दूर करने का प्रयत्न कर रहे थे। उसके ओंठ चिपके और जीभ तालू से लगी थी।

एक ने माथे पर हाथ रख कर कहा—"इसका माथा तो आग के गोले की तरह जल रहा है—लू लग गई शायद!"—एक बोला।

'लू' का नाम सुन कर लोगों ने कुछ बेचैनी सी दिखाई। दो आदमियों ने टांगें पकड़ीं, दो ने हाथ और सिर पकड़ उसे झुलाते हुए मिल की डिस्पेन्सरी की ओर ले गये।

खस की टट्टियों से शीतल डाक्टर के कमरे में ऊँची लम्बी टेबुल पर वह बेहोश पड़ा था। डाक्टर ने 'स्टेथसकोप' लगा कर दिल की धड़कन देखी। 'थर्मामीटर' लगाया और देख कर बतलाया—"इसका टैम्परेचर ११० के ऊपर है। कहाँ काम करता था यह ?"

"अंजन घर में डाकघर साहब।"—साथी मजदूर ने कहा।

"इतने टैम्परेचर में बचना मुश्किल है।" डाक्टर ने झटके से गर्दन हिलाते हुए कहा।

उधर बेहोश गोपाल के होंठ उसी प्रकार कुछ कहने को फड़क रहे थे—बार बार बेहोशी में। यदि कोई उन होंठों की भाषा को पढ़ने वाला होता तो फौरन कह देता कि वह अब भी कह रहा है—"यह वैभव की मीनार मेरे मस्तक पर टिकी है, मेरे जरा भी डगमगाने से गिर सकती है। मैं कितने ऊँचे हूँ—बहुत ऊँचे, सबसे ऊपर·····।

शासन की गति

१० जनवरी !

चमचमाती धूप—

कोलतार से पुती सड़क पर, सर्-सर् कर दौड़ती हुई साईकिल पर सवार मैं !

भव्य राजसभा भवन की विशाल गुम्बज और बगल में घन्टाघर की ऊँची मीनार दोनों ही एक दूसरे के बगल में धूप में चमक रहीं थीं। घंटाघर की सुइयाँ डेढ़ बजा रही थीं।

अर्धचन्द्राकार सफेद पत्थर के कौंसिल भवन के सामने सैकड़ों प्रजाजनों की भीड़ उस तपती धूप में जोश से भरी खड़ी थी। चेहरों पर प्रसन्नता और उत्साह के चिन्ह।

सामने सड़क पर रंगबिरंगी मोटरों की चमचमाती लम्बी कतार। उन पर फहराते हुए तिरंगे झंडे। खद्दर की पोशाकों में

ड्राइवर तैयार खड़े थे। सैकड़ों मजदूरों किसानों की वह भीड़ मेहराबदार पोर्टिको के सामने कान लगाये लाऊड स्पीकर से भीतर सभा भवन में होने वाली कार्यवाही सुन रही थी।

तन पर फटी धोती, मैला कुर्ता कई उघाड़े और नंगे सिर—फिर भी सब मग्न हो कर द्वार की ओर कौतुहल से भरे निहार रहे थे! झनझनाती खद्दर की टोपियों की बहार, लकदक धवल पोशाक में लोग प्रवेश द्वार की सीढ़ियाँ चढ़ उतर रहे थे।

इधर उधर बिखरे हुए दलों में चर्चाओं की सरगर्मी थी।

लाऊड स्पीकर से किसी सदस्य के भाषण की ध्वनि आ रही थी—"यह जरूरी है कि किसानों को अपने खेतों पर पूर्ण अधिकार दिया जाय। खेतों के पेड़ों पर जमींदारों का दावा गलत है।.....सवाल यह है कि जिस भूमि को किसान खून और पसीना बहाकर जोतते बोते हैं, उस पर उन्हें पेड़ लगाने का अधिकार क्यों न दिया जाय....."

वे सब धूप में खड़े ही खड़े जोश में आ कर पुकार उठते हैं—

"कांग्रेस की जय!

"इन्कलाब जिन्दाबाद!!"

तालियों की गड़गड़ाहट सुन कर वे सब मारे खुशी के उछल पड़ते हैं।

प्रवेश द्वार पर संगीन ताने वे लाल पगड़ी वाले सिपाही

जम्हाइयाँ लेते हुए, अडिग निःशब्द, पुतलों की तरह खड़े हैं। सब लोग भीतर से बाहर और बाहर से भीतर बेरोक टोक आ-जा रहे थे।

भीतर बरान्डे में संगमर्मर के फर्श पर किसानों और मजदूरों की पद धूलि उड़ रही थी। सिर पर कपड़ा डाले अध-नंगे किसान युवक वृद्ध सभी चकित नेत्रों से उस भवन की विशालता को निहार रहे थे, कुछ अपनापन-सा लिए हुए। उन्हीं के बगल से फायलें दबाये चपरासी, सिगरेट और बीड़ियाँ सुलगाये हुए क्लर्क, सूट पहिने जूतों की चरमराहट के साथ मुँह में पाइप सुलगाये अंग्रेज आफिसर गुजर रहे थे, कुछ कतराव-सा काटते हुए।

संगमर्मर की सीढ़ियों से कांग्रेसी नेतागण और असेम्बली के सदस्य तेजी से चढ़ उतर रहे थे, व्यस्त से! सारा भवन मानों बोल उठा था।

ऊपर भी वही नज्जारा। चेहरों पर व्यस्तता, हास और उल्लास मुखर हो उठा था। सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, किसान-मजदूर राजा-नवाब, अमीर-गरीब सभी इधर से उधर एक साथ टहल रहे थे। सभी का मानो इस भवन में एक सा अधिकार है।

सीढ़ियाँ चढ़ कर कुछ कदम और बढ़ा—

रीडिंग रूम के लाल बनात के पर्दे से झाँक कर देखा। मखमली फर्श और गलीचों पर वही वही किसानों मजदूरों की

अमीर और गरीबों के एक साथ चलते फिरते पग। वहाँ भी मानो उनका साम्राज्य था। सदस्यगण कोचों पर लेटे अखबार पर आँखें गड़ाये आराम कर रहे थे, तो कुछ पत्र पत्रिकाओं के खड़े खड़े पन्ने उलट रहे थे, कुछ कुर्सियों पर आसन जमाये ध्यानमग्न पढ़ रहे थे।

और आगे बढ़ने पर—

सामने आफिसों की लम्बी कतार! हर एक दरवाजे पर लाल बनात की वर्दियाँ पहिने, बेन्चों पर बैठे चपरासी। फ्रेम में जड़ी प्लेटों पर हमारे देखे सुने नेताओं और राष्ट्र सेवकों के नाम! गुजरते हुए दर्शक उन प्लेटों की ओर अँगुली उठा कर आत्मीयता का परिचय दे रहे थे! एक के बाद एक मैं प्लेटों को पढ़ता चला गया, सब पर हमारे जाने माने मन्त्रियों और अधिकारियों के नाम सफेदे से लिखे थे। उनको पढ़ कर ही हृदय अज्ञात रूप से आत्मीयता से विभोर हो उठता था!

मैं प्रीमियर के नाम की तख्ती खोजता हुआ आगे बढ़ रहा था! आखिर वह नाम भी एक दरवाजे की प्लेट पर दिखलाई दिया। मैं रुक गया। दरवाजे के बगल में पड़ी बेन्च पर लाल वर्दी पहिने वृद्ध चपरासी बैठा बैठा तकली पर सूत कात रहा था।

"प्रीमियर से मिलना है"—और उसने चुपचाप बगल के कमरे की ओर इशारा कर दिया।

वेटिंग रूम में दस-बारह व्यक्ति प्रीमियर के हँसमुख नव-

युवक प्राईवेट सेक्रेटरी को घेरे कुर्सियों पर आसीन थे। युवक सब की बातें सुन रहा था और समुचित उत्तर देता जा रहा था। मैंने कार्ड दिया और उसे देख कर उसने मुस्कराते हुए कहा—"ओह, आप बैठिये, अभी वे किसानों के एक डेपुटेशन से बातें कर रहे हैं।"

प्रतीक्षा में दस मिनिट और व्यतीत हुए तभी प्रीमियर के कमरे से पाँच देहाती किसान बन्धु निकलते दिखाई दिये, जिनके सिर ढकने का ढाई हाथ का अँगोछा और तन पर फटी सी बंडी! सभी के मुख खिलती प्रसन्नता।

तभी मैंने अपने खद्दर के उस नये सूट को और देखा जो विशेष रूप से इसी अवसर के लिए सिलवाया गया था, व्यर्थ सा लगा!

और तब मेरी बारी आई! दस मिनिट बाद इंटरव्यू ले कर निकला तो वह प्रीमियर का सरल गम्भीरता लिए हुए चेहरा, उनकी आत्मीयता प्रदर्शित करने वाली आँखें—एक निमिष को खिल उठने वाली बच्चों की सी हँसी! मैं उन्हीं की बात सोच रहा था। उनके ये शब्द—"यहाँ तो हम सब एक ही श्रेणी के हैं, आप किसी भी समय मिल सकते हैं। यहाँ सब के लिए दरवाजा खुला है।" मैं सोच ही रहा था, यह प्रीमियर का द्वार कितना उदार है। जहाँ किसान मजदूर, मिल मालिक, राजा नवाब सभी समान भाव से प्रवेश करते हैं।

लौटते हुए झाँक कर धारा सभा के उस वृत्ताकार हाल

को देखा ! जिसमें अर्धचन्द्राकार श्रेणी में सजाई हुई डेस्कों पर गान्धी टोपियों और खद्दर की बगबगी पोशाकों से सारे भवन में धवलिया का अपूर्व साम्राज्य था। धब्बों के समान काली अचकनों और सर्ज के सूटों में विरोधी दल की बेन्चों से झांकते हुए कतिपय चेहरे। ऊपर खचाखच भरी हुई दर्शक गैलरियाँ। बात बात पर सारे भवन में गूंज उठने वाली करतल ध्वनि और दर्शक गैलरियों से अनायास ही फूट पड़ने वाली उल्लास-पूर्ण चीखें।

मैं हाल से बाहर निकल रहा था। वही सङ्गमर्मर का फर्श, वही चहल पहल। इधर उधर तेजी से सङ्गमर्मर की श्वेत सीढ़ियों से चढ़ते उतरते हुए उल्लास भरे दर्शक ! सारे भवन में उड़ती हुई अन्नदाताओं की पगधूलि। कमरों से आने वाली टाइप राइटर्स की खट-खट ध्वनि,—मानो यह ध्वनि कभी बन्द न होगी। मैं सीढ़ियों से उतरता हुआ बाहर निकल रहा था।

शासन चल रहा था, लेकिन कितना गतिशील कितना उत्साहपूर्ण, मानों यह गति अविश्रान्त है।

लाउड स्पीकर के सामने खड़ी भीड़ उसी धैर्य के साथ करतल ध्वनि। वन्दे मातरम् और जय जयकार के आक्रोश !

\+ \+ \+

२२ नवम्बर !

आज फिर.....

उसी कोलतार से पुती सड़क पर, सर-सर दौड़ती हुई साईकिल !

कौंसिल भवन का चमचमाता हुआ गुम्बज और बगल घंटाघर, सभी पर तेज धूप चमक रही है।

लेकिन आज वह दूर ही से सुनाई देने वाला जनरव नहीं है। हृदय कुछ सशंकित-सा! सामने मुख्य सड़क के किनारे दूर ही से प्रबल प्रहरी के समान संकेत करता हुआ काला नोटिस बोर्ड—मालूम होता है हाल ही बिल्कुल ताजा ही लिखा गया है। उसकी छाती पर चमकने वाले सफेदे से पुते हुए अक्षर—

"पब्लिक को आगाह किया जाता है कि कौंसिल-भवन के आस पास पाँच सौ गज के भीतर सार्वजनिक रूप से इकट्ठा होना मना है·····"

बोर्ड पढ़ कर हृदय धक-धक कर उठा। भवन के सामने वाली सड़क पर खड़ी हुई दो तीन काली पीली मोटरें। लेकिन स्टियरिंग पकड़े बैठे हुए ड्राइवर्स की वर्दियाँ खद्दर की सफेद नहीं हैं और न फहराते हुए तिरंगे झंडे ही दिखाई देते हैं। वे स्टियरिंग पर मस्तक टेके ऊँघते-से बैठे हैं। सामने महराबदार पोर्टिको पर लाउड स्पीकर की जगह पंख फड़फड़ाते हुए दो कबूतर। सामने मैदान में बिछी हुई सफेद बजरी—लेकिन वहाँ कोई नहीं! समस्त वातावरण काल का डसा-सा। कबूतरों ने फिर पंख फड़फड़ाए।

इधर उधर साईकिलों पर जाते आते वही लालवर्दी वाले चपरासी, फाइलें लादे हुए मौन।

प्रवेश द्वार पर संगीनें ताने हुए दो सिपाही निर्जीव पुतली की तरह इधर से उधर लैफ्ट-राइट करते हुए मार्च कर रहे थे.....! आज उनकी आँखों में सतर्कता थी !

मैं सीढ़ियाँ चढ़ गया 'खट-खट' सिपाही ने कदम रोक कर संदिग्ध दृष्टिपात किया, फिर लैफ्ट-राइट करता हुआ एक तरफ चला गया।

वह संगमर्मर का भीतरी फर्श सूना-सा इधर उधर टहलते एक दो क्लर्कों की पग ध्वनि समस्त वातावरण शान्त स्तब्ध-सा !

मैं ऊपरी मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, लेकिन अकेले मेरे ही पैरों की 'खट-खट'—ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी !

ऊपर पहुँचने पर एक अँग्रेज आफिसर उपेक्षापूर्ण दृष्टि से मुझे घूरता हुआ मुँह में पाइप दबाये निकल गया।

'रीडिंग रूम' का लाल बनात का पर्दा स्थिर सा हो कर हवा के झोंके से धीरे धीरे डोल रहा था।

वही मखमली फर्श कुर्सियाँ और सोफे—लेकिन सब खाली-खाली। चपरासी झाड़न टेबुल के अखबारों अलमारियों की धूल झाड़ रहा था—'फट-फट'.....लायब्रेरियन चुपचाप हाथ पर हाथ धरे घड़ी की सुइयाँ निहार रहा ! वहाँ की निस्तब्धता केवल झाड़न की 'फट-फट ध्वनि से भङ्ग हो रही थी।

आगे बढ़ा—

वही दरवाजे लेकिन बन्द जिनमें पीतल के बड़े बड़े ताले लटक रहे थे। बेंचें भी उसी प्रकार दरवाजों के बगल में पड़ी

थीं, लेकिन उन पर बैठने वाले चपरासी न थे। नाम की प्लेटें सूनी थीं कि छूँछे फ्रेम अस्तित्व-हीन से लटक रहे थे।

मैंने रोशनदान से दीवालों के हरे रंग और रुके हुए पंखों को देखा! मैं आगे बढ़ रहा था, मेरे ही जूतों की ध्वनि उस लम्बे बरान्डे में गूंज रही थी।

रेस्तराँ में दो तीन क्लर्क बैठे बैठे मजाक सा करते हुए चाय पी रहे थे!

दूसरी ओर के बरान्डे में भी सारे के सारे कमरे एक छोर से दूसरे छोर तक बन्द दिखाई दे रहे थे! उसी प्रकार नंगे फ्रेम लटके हुए थे! उन सब के बीच केवल अँग्रेज सेक्रेटरी की तख्ती अब भी उसी प्रकार लगी थी। बैन्च पर बैठा हुआ चपरासी फाइलें बाँध रहा था।

गोल सभा भवन के द्वार भी चारों तरफ से बन्द थे। मैंने शीशों से झाँक कर देखा डैस्कों पर कागज और बिखरे हुए पन्ने। अध्यक्ष की कुर्सी पर काले कपड़े का आवरण चढ़ा दिया गया था! वही अर्धचन्द्राकार हाल जो उस दिन तालियों की गड़गड़ाहट और अट्टहास से गूंज रहा था, आज उसमें आँधी हुई वायु जैसे गम्भीर साँसें ले रही थी!

मैं नीचे उतर आया! बगल वाले विभागों से टाइपराइटर्स की 'खट-खट' ध्वनि ..... सारा भवन मौन साधे हुए उदास—मृत्यु की सी गम्भीरता लादे हुए .....।

शासन की गति रुक गई थी .....।

+ + +

१५ जनवरी १९४० ।

शासन गवर्नर और उनके सलाहकारों के हाथों में फिर गतिशील हो उठा है ।

उसी सड़क पर·····

वही कौंसिल भवन का विशाल गुम्बज और घन्टाघर, थोड़ी ही दूरी पर अंग्रेजी शासन का बोझ लादे हुए काला साइन बोर्ड·····"कौंसिल भवन के आस पास पाँच सौ गज के भीतर सार्वजनिक रूप से इकट्ठा होना मना है·····!"

सामने सड़क पर आफिसरों की चमचमाती हुई मोटरें, नीली, हरी वर्दियों में लैस ड्राइवर ।

इधर से उधर दौड़ते हुए चपरासी हाँफते हुए, त्रसित-से, शासन के बोझ से कमर झुकाए ।

वही विशाल प्रवेशद्वार, तनकर संगीनें ताने खड़े थे । आज उनके चेहरों से रोब बरस रहा था और आँखों में शैतानियत ।

मैंने सीढ़ियों पर कदम बढ़ाये·····

दोनों की त्यौरियाँ तनी, एक रोकने के लिए कुछ बढ़ा, तब तक निकल चुका था ।

वही सङ्गमर्मर का फर्श, लगभग बीस मजदूर औरतें उस सूने फर्श के पद चिन्हों को रगड़-रगड़ कर मिटा रहीं थीं । उनके व्यस्त चेहरे और एक साथ फर्श पर चलने वाले हाथों की ध्वनि ।

चपरासी इस आफिस से उस आफिस तक आतंक से डसे कमर तोड़े इधर से उधर दौड़ रहे थे।

काले सूटों और बूटों में बरसों सरकारी मशीनरी में घिसते आने वाले क्लर्क, वृद्ध और युवक जो शासन के आदी हो गये हैं। न जाने कितने प्रकार की सरकारें आईं और इन्हें अपने अपने ढंग से चलाकर चली गयीं। वे आज भी आफिसरों के सामने सिर झुका कर सलाम करते हुए—बगल में कागज और फाइलें दबाये आ जा रहे थे।

टाइपराइटर्स की निर्जीव-सी 'खट-खट' ध्वनि उन कमरों में गूँज रही थी।

शासन चल रहा था।

संगमर्मर की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। बगल से वही शासन के पुर्जे घिसे-से थके से मेरी बगल से गुजर रहे थे और नये-नये अंग्रेज आफिसरों के चेहरे इस छोर से उस छोर तक झाँक रहे थे।

लायब्रेरी भी उसी प्रकार सजी हुई, थी पुस्तकें और समाचार पत्र करीने से टेबिल पर रखे थे! कुछ क्लर्क आराम से लेटे हुए गप्पें लड़ा रहे थे। एक-दो आदमी फालतू समय काटने के लिए अखबार के पन्ने उलट रहे थे!

वही लम्बा बरान्डा और वही आफिसों की लम्बी कतार.....

आफिस भरे थे लेकिन द्वार बन्द! लाल वर्दियों में जरी

की चपरास कसे अनुशासन शील चपरासी सजीव माडल्स की तरह दम साधे द्वारों पर खड़े थे। किसी आफिसर के बरान्डे से गुजरते ही वे सब एक के बाद एक कमर तोड़ कर सलाम बजाते और अन्तिम छोर तक बजाते जाते थे—फिर तन कर स्टेचू की तरह! मैं सोच रहा था क्या इनका यही जीवन है ?

नाम के प्लेटों की कतार—कल के रिक्त प्रोम भरे थे—लेकिन अनजाने, थे पहिचाने—से नामों से वे भरे थे—नामों के साथ 'सी० आई० ई०', 'आइ० सी० एस', 'राय बहादुर', 'खान बहादुर' के पुछल्ले लगे हुए!

सामने के दूसरे बरान्डे में जहाँ मन्त्रियों के कमरे थे—उन कमरों की तख्तियों पर बिल्कुल ताजे सफेदे से लिखे हुए अक्षर चमक रहे थे.....'एडवाइजर टू दी गवर्नर'..... 'एडवाइजर टू दी गवर्नर'.....।

प्रीमियर के द्वार के सामने मैं रुका.....वहाँ भी 'एडवाइजर टू दी गवर्नर' लिखा था!—द्वार आज बन्द था। वही बुड्ढा चपरासी आज भी बैठा हुआ था। लेकिन उसके चेहरे पर वह आजादी भरी चैन की भावना नहीं है।

मैंने अपना कार्ड देने के लिए बढ़ाया, उसने कार्ड जरी की चपरास में खोंस कर सिर से पैर तक मुझे निहारते हुए कहा—"साहब लंच पर गये, नहीं मिल सकते—पहिले लिखा कर लाइये।"

"ओह"—मेरे मुँह से सहज ही निकल गया, मैंने सोचा,

यह वही वृद्ध नम्र चपरासी है जिसे शासन ने इतने जल्दी बदल दिया है। यह शासन बोल रहा है।

कार्ड वापिस ले कर मैंने जेब में डाला। इंटरव्यू लेने की इच्छा भीतर ही भीतर दफन हो चुकी थी।

लोग द्वारों के सामने से पैर दबा कर गुजर रहे थे!

वही टाइपराइटर्स की अविश्रान्त सूनी-सी 'खट-खट' ध्वनि.....।

निशब्द इधर से उधर दम साधे कमर तोड़े भागते हुए चपरासी—

श्लथ-सी आँखों में दीर्घ अनुभव छिपाये क्लर्कों के चेहरे!

सङ्गमर्मर के अन्नदाताओं के पदों के अवशेष चिन्हों को मिटाने में प्रयत्नशील वे बीस मजदूरिनें—उनके एक साथ चलने वाले हाथों से निकलनेवाली 'घस-घिस' ध्वनि!

मैं तेजी से सीढ़ियाँ उतर कर बाहर सड़क पर आ गया। एक बार उस कौंसिल भवन के गुम्बज और घन्टाघर को देखा वे उसी प्रकार धूप में चमक रहे थे!

शासन चल रहा था।

लेकिन कुछ खोया-सा था, जिसे आँखें ढूँढ़े भी न पा सकीं—वह सजीवता,—वह अपमान—वह उल्लास.....

रेलवे प्लेटफार्म पर

रेलवे प्लेटफार्म पर पैर रखते ही ट्रेन छूट गई.....।

हरे-हरे डिब्बे प्लेटफार्म छोड़ कर भागते नजर आ रहे थे। डिब्बे की खिड़कियों से सैकड़ों चेहरे और हिलते हुए हाथ झाँक रहे थे, उसी प्रकार प्लेटफार्म पर भी! मेरी दृष्टि गार्ड के डिब्बे पर अटकी रह गई! एक हाथ से हैण्डिल पकड़े और दूसरे हाथ से हरी-हरी बत्ती झुलाता हुआ, मुँह में सीटी दबाये, वह सुदूर मुँह फाड़े हुए अन्धकार की ओर अग्रसर था! एक-एक कर समस्त चेहरे धूमिल पड़ते गये। दृष्टि गार्ड के डिब्बे की लाल बत्ती पर थी! धीरे धीरे वह ट्रेन और लाल बत्ती भी उसी असीम अन्धकार के गर्त में समा गई! केवल भाप के दो तीन काले गुब्बारे से उठे और बस। मैं हताश अवसन्न-सा बिजली की बत्तियों से जगमगाते प्लेटफार्म पर खड़ा था।

सब चले गये—

वे कुली जिनके लाल-लाल कुर्तों पर पसीने के बड़े बड़े गोले से धब्बे दिखाई दे रहे थे ! कई अपने नीले साफे के छोर से मुँह का पसीना पोंछते हुए स्नथ, प्लेटफार्म छोड़ कर बाहर निकल गये ! वे खोन्चे वाले भी जिनके धुएँ से काले कपड़े, पसीने और कोयले की धूल से चिकटे हुए, पान-बीड़ी, शरबत, मिठाई-पूरी की आवाजें बुलन्द कर रहे थे, अब मौन कन्धे पर खोन्चा रक्खे, पसीने की बूँदें प्लेटफार्म पर टपकाते हुए बाहर निकल रहे थे।

प्लेटफार्म शून्य निस्तब्ध-सा ! दूसरे छोर पर उधर दो तीन टिकिट कलेक्टर चहल कदमी कर रहे थे।

वह गेट वाला टिकिट कलेक्टर स्टूल पर बैठ गया। सफेदी की ओर बढ़ती हुई बड़ी-बड़ी मूँछों पर, जो बीड़ी के धुएँ से पीली दिखाई दे रही थीं, हाथ फेरा। उसकी आँखें, जो अभी कुछ देर पहिले चश्में के भीतर से आने-जाने वालों को सतर्कता पूर्वक घूर रही थीं, उस मोटे उपन्यास के पन्नों में डूब गईं।

धीरे-धीरे मैंने उसके पास पहुँच कर पूँछा—"अब कानपुर को दूसरी गाड़ी कितने बजे मिलेगी ?"

"दस बजे।"—उसने उपन्यास में आँखें गड़ाये हुए ही कहा। फिर कुछ रुक कर बोला—"लेकिन वह तो आज ढाई घन्टे लेट है।"

उत्तर के साथ दृष्टि गेट पर लगी हुई घड़ी पर दौड़ गई ! उसकी बड़ी बड़ी सुइयाँ आठ बज कर दस मिनिट पर रुकी थीं।

पूरे साढ़े चार घन्टे यहीं इसी सुनसान प्लेटफार्म पर प्रतीक्षा में गुजारने होंगे। मैं हताश-सा रह गया ? 'साढ़े चार घन्टे'—शब्द एक गहरी सांस के साथ निकल गये।

कभी इस प्लेटफार्म को देख कर मन मारे खुशी के नाच उठता था। लेकिन वह आज भार हो रहा था। उसकी निस्तब्धता आज काटने को दौड़ रही थी। पता नहीं कब मैंने पहिली बार इस प्लेटफार्म को देखा। लेकिन इस रूप में आज वह पहिले ही पहिल दृष्टिगोचर हो रहा था !

आज जीवन की एक परीक्षा में असफल हो कर लौटा जा रहा था। चिट्ठी मिली नौकरी के लिए प्रतियोगिता में भाग लेने की। इन्टरव्यू के लिए बुलाया गया था। लेकिन उसने महत् आश्चर्य अपनी दृष्टि में भर मुझे सिर से पैर तक निहारा। मेरे साथी थे बढ़िया सिल्क और सर्ज के सूटों से सज्जित। लेकिन मेरे पास क्या ? यह फटा-सा कुरता और पजामा। मैंने अपने जीवन की किताब उसके सामने खोल कर रख दी।

'इन्टरव्यू' के पश्चात् सब प्रतीक्षा में बैठे थे। एक-एक करके उसने सब को भीतर बुलाया और मुझे यह कागज का टुकड़ा मिला। उसमें लिखा था—

"तुम आवारे हो ! तुम्हारे कोई नहीं। तुम्हारी जमानत कौन करेगा ? फिर तुम्हारे हाथ में रुपये रहे नहीं—बैंक में जिम्मेदारी काम तुम्हें नहीं सौंपा जा सकता। तुम टुटपुंजिया हो।"—

मेरी आशाओं पर पानी फेर देने वाला वह कागज का टुकड़ा अब भी जेब में पड़ा था।

हाथ कुरते की जेब में चला गया।

एक बार कागज के टुकड़े पर लाल पेन्सिल लिखे उन लाल-लाल खूनी अक्षरों को देखा।

मैं आवारा हूँ ? टुटपुंजिया हूँ ? मेरा कौन विश्वास ?

जी में आया उस पुर्जे को खूब जोर से चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ता रहूँ। अपने इस आशावादी हृदय को पीस डालूँ।

आखिर कौन टुटपुंजिया नहीं ?

मैं आवारा हूँ। टुटपुंजिया हूँ। मेरा कौन विश्वास !

अशान्ति और उद्विग्नता से आक्रान्त मैं तेजी से प्लेटफार्म पर टहल रहा था।

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे-प्लेटफार्म शून्य, निस्तब्ध-सा।

\+ \+ \+

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे प्लेटफार्म ! शून्य, निस्तब्ध-सा।

अशान्ति और उद्विग्नता से आक्रान्त मैं तेजी से प्लेटफार्म पर घूम रहा था।

सहसा प्लेटफार्म हाहाकारी निनाद से गूंज उठा। सैकड़ों

कंठों से निकले 'तबर्रा'* के के नारे प्लेटफार्म फोड़ कर गूंज रहे थे।

'लगेज-वे' के उस सुरंग सरीखे रास्ते से तबर्राबादियों की वह लैनडोरी प्लेटफार्म पर, बाँबी से निकलते हुए सर्प के समान दिखाई दे रही थी। वे सब पुलिस से घिरे हुए, अपनी तान अपने स्वर में डूबे हुए—वे झूम रहे थे, मस्त हो रहे थे और तालियों की गत पर जोश से भरे नाच रहे थे।

वे सब थे डेढ़ सौ के लगभग। उनके लम्बे तगड़े बदन पर ढीले कुरते पसीने से गीले हो कर निचुड़ रहे थे! सिर के कानों से नीचे तक लटकते हुए लम्बे बाल और रंगीन साफे! कमर में तहमत, अनेकों के सीने पर से जड़ी मखमली वास्केटस, जिनके चाँदी के जंजीरदार बटन झूल रहे थे। लेकिन वे सब अपनी धुन में मस्त थे—बलूची, पठान और पंजाबी।

मैं अलक्षित-सा उनके और भी समीप बढ़ा चला जा रहा था, और तब सिपाही ने मुझे धक्का दे कर पीछे ढकेलते हुए कहा—"दूर रहो, ये लोग खूँख्वार हैं!"

बाहर मुसाफिरखाने से आ कर तमाशबीनों की भीड़ न जाने कब जमा हो गई थी, उसी में मैं घिर चुका था।

अवसाद की ज्वाला सी भड़क रही थी! जी चाह रहा था ये और भी जोर से चिल्लाएँ इतने जोर से कि मैं कुछ भी

---

*शिया मुसलमानों द्वारा लखनऊ में सुन्नियों के विरुद्ध चलाया आन्दोलन।

न सुन सकूँ। कान फटने लगें!—मैं अलक्षित सा उसी भीड़ में घिरा साथ बढ़ता चला गया।

प्लेटफार्म के एक छोर पर पहुँच कर, अन्तिम बार जोर से चिल्लाकर, सारे वातावरण को प्रकम्पित से करते हुए, वे बैठ गये। वे अब शान्त थे—दम फूल जाने से उनकी श्वास—प्रश्वास की प्रत्येक गति वक्ष पर परिलक्षित हो रही थी। किसी ने साफे के छोर से, तो किसी ने अपने लम्बे रेशमी रूमाल से छाती का पसीना पोंछा। उस अधेड़, लाल-लाल दाढ़ी वाले पठान ने नायब से चिल्ला कर कहा—"खाना कहाँ है? खाना लाओ जल्दी।"

वे सब के सब भी उसके स्वर में स्वर मिलाते हुए चिल्ला उठे—"खाना·····खाना····· खाना कहाँ है?

क्षुधा मानों उनके चेहरों पर मूर्तिमान हो उठी थी! उनकी आँखें जल रही थीं। एक बड़े भारी टोकरे में पूड़ियाँ और एल्मोनियम के काले तबेले में आलू का साग देखते ही वे सब झपट पड़े। उनकी खूनी आँखें भूख से लोलुप हो उठी थीं! मुश्किल से उन्हें गरदन दबा दबा कर एक कतार में शान्त बैठा पाया!

चार पूड़ियाँ और आलू के कतरे, एक सिपाही हर एक पल्ले में फेंकता जाता था। वे जल्दी-जल्दी उन्हें पेट में ठूँसने का प्रयत्न कर रहे थे!

वह विशालकाय लम्बा तगड़ा युवक आखिर बोल ही

उठा- "नहीं इतने से हमारा पेट नहीं भरेगा और चाहिए जमादार साब !

"नहीं और नहीं मिलेगा—चुप रहो।"—सिपाही ने डपट कर उसे बिठाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"और दो, हमारा पेट नहीं भर सकता, अभी बहुत खाली है।"—अन्तिम पूड़ी गले से गटकते हुए युवक ने कहा। सिपाही युवक की बात अनसुनी करके पूड़ियाँ परोसता हुआ आगे बढ़ गया।

"मुझे और चाहिए"—युवक चिल्लाता हुआ टोकरे पर टूट पड़ा और जितनी आ सकीं, उसने पूड़ियाँ हाथ में ले कर उन्हें वहीं खड़े खड़े, जल्दी मुंह में ठूँसना शुरू कर दिया। दबी गर्म पूड़ियों की भाप उसके मुंह से फूट निकली। 'उ-हू-हू-हू' करते हुए युवक ने पूड़ियाँ निगल लीं।

क्षण भर के लिए सन्नाटा। सिपाही युवक के हाथ की बाकी पूड़ियाँ छीन लेने के लिए झपटा, लेकिन तब तक उसने वे भी मुंह में भर लीं और दौड़ कर नल में जानवर की तरह मुंह अड़ा दिया और उन्हें भी पानी के साथ पेट में उतार लिया। सिपाही क्रोध भरी लाल-लाल आँखें निकाले ताकता रह गया।

युवक फिर अपनी जगह पर आ कर बैठ गया। विजय गर्व से उसने सिपाही की ओर मुंह में उँगली डाल कर छालों को सहलाते हुए देखा।

दो डिब्बे ऐंजिन के साथ ठीक सामने प्लेटफार्म पर आ लगे। खाना पेट में भर लेने के बाद उन्हें लोहे की जालीदार खिड़कियों वाले कैदी डिब्बों में ठूँस दिया गया। गाड़ी छूट गई। वे सब उन डिब्बों में बन्द गला फाड़ कर चिल्लाते हुए दृष्टि से ओझल हो गये!

उस जगह को फिर मैंने एक बार देखा जहाँ वे सब बैठे थे। पसीने से वह स्थान चिपचिपा और गीला हो गया था। उसमें से विचित्र प्रकार की गन्ध-सी उठ कर गैस की तरह नाक में प्रवेश कर रही थी।

प्लेटफार्म फिर शून्य, निस्तब्ध, निर्जन-सा.....

मैं इस स्थान से भाग खड़ा हुआ।

फिर वही अशान्ति, उद्भ्रान्ति और उत्पीड़न अन्तर में पछाड़ें मार रहा था। मैं प्लेटफार्म पर और भी तेजी से टहल रहा था।

\+ \+ \+

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे प्लेटफार्म, शून्य-निस्तब्ध-सा।

मैं तेजी से टहल रहा था। मेरे पैर अलक्षित-से प्लेटफार्म के उस सीमेन्ट के चिकने फर्श पर बढ़े जा रहे थे, लक्ष्यहीन।

अशान्ति के थपेड़े प्राणों को आन्दोलित कर रहे थे। उस प्रकाश से मैं बचना चाहता था।

मैं प्लेटफार्म के उस अंधेरे से कोने में बढ़ा चला जा रहा था।

धुंधले प्रकाश में हिलती विचित्र छाया सामने दिखाई दी। मैं उसी ओर बढ़ा।

लेकिन यह क्या ? पशुवत्—

अरे ! यह चौपाया आदमी। एक चित्र सा आँखों के सामने झूल कर रह गया। जीवन उसके लिए अभिशाप—बिल्कुल नङ्ग धड़ङ्ग, कमर में फटा चीथड़ा। हाथों और घुटनों पर फट्टे की गद्दियाँ बँधी हुई। वह हाथ और पाँव दोनों से चल रहा था। गर्दन उठाए। बढ़े हुए सिर के बाल खड़े खड़े सी दिखाई दे रहे थे। पीठ बँधी हुई छोटी सी पोटली।

आश्चर्यवश मैं उसी के पास रुक गया।

उसने भी आशा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और एक हाथ उठा कर सलाम करते हुए बोला—

"बाबू जी एक पैसा ! तुम्हारे बाल बच्चे जीते रहें बाबू जी !"

अनुभूति में आ कर मैंने पाजामे की जेब में हाथ डाला, लेकिन सिवाय सिगरेट के दो तीन टुकड़ों के वहाँ क्या था !

"कहाँ जायगा ?" मैंने पूँछा !

"जगन्नाथपुरी रथयात्रा देखने बाबू जी ! एक पैसा !"—उसने दृढ़, एवं विश्वास भरे स्वर में कहा।

ओह ! यह मैंने क्या किया ! उसके चेहरे पर ऐसा

विश्वास था, जैसे मैं उसके हाथ पर पैसा रखता ही हूँ ! लेकिन उसका उत्तर सुन कर बरबस मेरे होंठों पर हठात मुस्कराहट फूट निकली !

जगन्नाथपुरी रथ यात्रा देखने—पागल यहाँ से ६०० मील दूर, किसी आशाओं पर जीते हैं ? "मैंने मन ही मन सोचा ! कितना विश्वास है उसमें, हाथ पैर से लाचार मानव में—लेकिन उसके चेहरे पर लाचारी का नाम निशान भी न था।

मैंने आँख चुरा कर निकल भागना चाहा और आगे पैर बढ़ा दिये।

"अजी, बाबू जी ! एक पैसा तो दिये जाइये—आपके बाल बच्चे बने रहें !"—चलते-चलते उसकी आवाज मेरे कानों से टकराई ! लेकिन मैं मुड़ कर उसकी ओर देख भी न सका ! बहुत दूर जा कर छिपी नजरों से मैंने उस ओर निहारा वह दूसरे प्लेटफार्म पर पहुँचने के लिए दोनों हाथों से चौपाये जानवर के समान सीढ़ियाँ चढ़ता चला जा रहा था।

छै सौ मील जगन्नाथपुरी कितनी दीर्घ आशा ! और मैं जीवन की पहिली ही मंजिल पर लड़खड़ा रहा हूँ।

विचारमग्न मैं अलक्षित-सा बढ़ रहा था। सामने ही रिफ्रेशमेन्ट रूम की पीतल के अक्षरों से जड़ी तख्ती लटक रही थी। दरवाजे के बगल में ही 'शोविन्डो' के पास खड़ी वह टिकिट चैकर एंग्लोइंडियन लड़की गौर से 'शोविन्डो' सजी बनारसी साड़ी के बार्डर को निहार रही थी, उसके गहरे ब्राऊन

रंग की 'स्फर्ट' और कन्धे पर लटकता हुआ पंच। सुन्दर लहरों वाले बाल 'नेट' से कसे हुए थे।

एक हाथ में कुत्ते की जंजीर थी कुत्ता बार बार उछल कर उसके बेल्ट को छूने की कोशिश कर रहा था।

हवा के झोंके के समान रेस्ट्राँ के दरवाजे से बेचारा अपनी स्वच्छ दुग्ध फेन सरीखी जीन की पोशाक कुल्ले पर कलगीदार साफा बांधे हाथ की हथेली पर ट्रे साधे हुए निकला।

लड़की ने सीटी के साथ उसे बुलाया—वह रुका और हंस कर बोला—"आप हैं मिस साहिबा।"

"चार पैसे का बिस्कुट दो मेरे जैकी को"—कुत्ते की जंजीर खींच कर "क्यों जैकी बिस्कुट लेगा—अच्छा पहिले सलाम कर बेयरा को।"—जंजीर खींच कर कुत्ते को दो पैरों पर खड़ा करते हुए—कुत्ता दो पैरों पर खड़ा हो गया और अगला पंजा उठा कर नाक से लगा लिया।

बेयरा कुत्ते की हरकत देख प्रसन्नता से फूल उठा था—उसने ट्रे में से कुछ बिस्कुट निकाल कर दिये।

लेकिन मेरे मानस पट पर कुत्ते का सलाम देख कर वह भिखारी का फट्टे की गद्दी से बँधा दाँया हाथ घूम गया उसने भी तो ठीक इसी तरह एक हाथ उठा कर सलाम किया था। वह हाथ साक्षात सा आँखों के सामने झूल रहा था—मैंने उस ओर से ध्यान हटाना चाहा।

एंग्लो इंडियन युवती ने अपने सफेद दाँत चमका कर

कहा—'थैंक्यू' फिर हाथ में बिस्कुट ले उसे ऊँचा उठा कर कुत्ते को उछालने के लिए हाथ नचाने लगी।

कुत्ते ने दो पैरों के बल खड़े हो कर बिस्कुट पाने के लिए उछलना शुरू किया। वह बार बार अपनी पूरी ताकत से कभी कभी सीने तक तीन चार चार फुट ऊँचे उछल रहा था युवती प्रसन्न हो रही थी।

उसने उछाल कर बिस्कुट फेंका कुत्ते ने उसे लपक कर ऊपर ही ऊपर मुंह से पकड़ लिया।

"एक्सीलेंट" सजीव प्रसन्नता उसके मुख पर नाच रही थी।

मैं सोच रहा था बचपन की बात मदारी भी तो इसी प्रकार तमाशा करता है। यह कुत्ता—वह आदमी—फिर पट्टी बँधा हाथ नेत्रों के सामने झूल गया—मैं उस ओर से ध्यान हटाने की कोशिश करते हुए फिर कुत्ते की उछल कूद देखने लगा।

अबकी बार कुत्ता चार और पाँच फुट तक उछल रहा था और भी जोर से—और हायर युवती के मुख से प्रसन्नता भरी चीख सी निकलती जब वह बिस्कुट अधर में ही पकड़ लेता।

कुत्ता जोरों से उछल रहा था और मैं उस ऊँचाई को नापने का प्रयत्न कर रहा था—लेकिन वह गद्दी वाला हाथ जैसे ओझल होना ही नहीं चाहता था। भिखारी का वह सलाम करता हुआ हाथ—यह कुत्ता भी तो सलाम करता है—ख्याल

आते ही न जाने कैसी बेचैनी सी मैं अनुभव कर रहा था—और उससे पिन्ड छुड़ाने के लिए फिर चल पड़ा—अलक्षित सा तूफान में बहता हुआ !

+ + +

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे प्लेटफार्म शून्य निस्तब्ध-सा।

"हरामजादे, इन प्यालियों के दाम कौन देगा ?"

बाहर मुसाफिर खाने में वह टी-स्टाल का मालिक नौकर की तमाचों से खबर लेता हुआ चीख रहा था। दूकान पर अनेकों तमाशबीन और मुसाफिर भीड़ लगा कर तमाशा देख रहे थे।

"अबी छोड़ दो सेठ ! आखिर बच्चा है"—वह मोटा गुजराती मुसाफिर शराफत दिखलाते हुए बोल उठा।

और हाँ, वह था भी तो बच्चा, चार ही चाँटे खाने के बाद उसके गालों पर लाल अंगुलियों के निशान उभड़ आये। मुश्किल से आठ बरस की वयस। "देखिए; लड़का है ?"—दूकानदार ने बड़े ढंग से लोगों को आकर्षित करते हुए उसका पसीन सा मैला हाथ पकड़ कर आगे को धकेलते हुए कहा—"परसों चार चम्मच गायब हो गये, पता नहीं कहाँ बेच आता है ?.....साला".....फिर 'तड़-तड़' नौकर के गाल पर दो तमाचे पड़े नौकर रोता हुआ दूर जा खड़ा हुआ।

चाय वाला कुछ देर तक उदास मुद्रा बनाये स्टूल पर कुछ देर बैठा रहा। थोड़ी ही देर में ग्राहकों से बातचीत करते-करते उसके चेहरे की वह उदासी उड़ गई। झगड़े में जमा हुए काफी आदमी वहीं कुर्सियों पर बैठ कर चाय पीने लगे थे।

सफेद चमकते हुए चीनी के प्यालों से उठती हुई चाय की महक पर ध्यान गया!

अगर वह चाय पिला दे?—मैंने सोचा—'लेकिन वह क्यों पिलायेगा? आखिर मैं उसका कौन होता हूँ?'

सामने पत्थर के कोयलों की तेज अंगीठी पर एलमोनियम की डेकची में चाय उबल रही थी। भाप के साथ निकलती हुई चाय की भीनी भीनी महक, इस समय कितनी अच्छी लग रही थी! मैं दो कदम उस डेकची के निकट बढ़ गया। चाय की भाप और भी जोरों के साथ लगी। कुछ-कुछ संतुष्टि का सा अनुभव·····मानों सचमुच चाय ही·····।"

मैं दो कदम और खिसक कर बिल्कुल नजदीक पहुँच गया। किसी ने देखा तो नहीं कुछ भय सा·····।

'बल, बल, बल'—शब्द कर उबलती हुई चाय की भाप अब बिल्कुल सीधी मेरे मुंह पर लग रही थी।

'ओह! कितनी मधुर और मादक महक'—मैं और भी डेकची की ओर झुक गया। अपनी आँखें इस ढंग से डेकची पर गड़ा दीं, मानों किसी वस्तु विशेष का गम्भीर निरीक्षण कर रहा था। एक दो बार जम्हाई लेने के ढंग पर मुंह

खोला और खूब जी भर कर जितनी भाप बन सकी मुंह में समा जाने दी। काफी संतोष मिला।

कुरते से पसीना निचुड़ रहा था। पत्थर के कोयले की लाल लाल तेज आँच मुंह पर चमक रही थी, पर मैं हट न सका।

उधर चायदानी की चाय समाप्त होते ही उसने मेरी ओर दृष्टिपात किया। स्वर को सरस बना कर उसने कहा—

"बाबू जी इधर आ जाइये। काफी कुर्सियाँ खाली हैं।" दूसरे ही क्षण वह अंगीठी की ओर बढ़ आया। एक अंगुली से उसने माथे का पसीना जमीन पर टपकाते हुए अंगुली झिड़क दी। दो तीन छींटे डेकची के अंगारों पर छन्न से गिरे।

मैंने ही कहा—"मैं देख रहा हूँ इस अल्मोनियम की डेकची पर उठाये गये फूल कितने सुन्दर हैं।"

यद्यपि उन फूलों की दरारों में घुसी हुई चाय की पत्तियाँ डेकची पर अलग रंग चढ़ा रहीं थीं। वह मेरे मुख की ओर कुछ न समझ कर आश्चर्य से मुंह बाये निहार रहा था। चाय की रंगत देखने के लिए उसने डेकची पर से ढक्कन हटाया, एक बड़ा भारी भाप का गुब्बारा निकला, मैंने तनिक और झुक कर जम्हाई लेते हुए मुंह फैला दिया। चाय के दो तीन गरम छींटे और पत्तियों के टुकड़े मुंह में गिरे।

"देखिये क्या बढ़िया रंगत चढ़ी है। आइये दो प्याले पी

लीजिए, फिर देखिये सारी सुस्ती मिनिटों में भगती है।" उसने अंगीठी पर से डेकची उतारते हुए कहा।

"नहीं मैं चाय नहीं पीता"—कहते हुए मैं बाहर की ओर बढ़ गया जिधर इक्के ताँगे खड़े थे।

पजामे के भीतर पसीना 'जांघों से बह कर जूतों और मोजों को तर कर रहा था। ठंडी हवा के झोंकों में वह सूखने लगा। अब मैं सन्तोष का अनुभव करता हुआ उस दूकान की ओर देख रहा था। चाय वाला प्यालों में चाय ढाल रहा था।

+ + +

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे प्लेटफार्म—शून्य निस्तब्ध-सा!

सामने खड़ा लाल पगड़ी वाला सिपाही—तेल से पुता चमकता हुआ उसका चेहरा! वह आठ दस बारह बरस का पालिश वाला छोकरा खूब रगड़ रगड़ कर उसके बूँटों पर ब्रुश चला रहा था। वह हल्की सी जान—छोकरे के लम्बे लम्बे बाल माथे के सामने आँखों पर झूल रहे थे और वह बिना हाथ रोके एक खास लहजे के साथ सिर झटक कर उन्हें पीछे की ओर बार बार कर लेता—इस झटके में ही वह बार बार सिपाही के मुँह की ओर ताक लेता!

'खट-पट, खट-पट'—एक इक्का सामने से चला आ रहा था! वह सिपाही कनखियों से उसे बार बार निहार रहा था!

"अबे जरा जोर बाँध कर। मालूम होता है हाथों में जान ही नहीं है।"—बूट की ठोकर से हल्का सा ठूँसा छोकरे की कमर पर लगा कर सिपाही ने अपनी मूँछे ऐंठते हुए कहा!

"अजी देख तो लो—अब तो आइने से चमकने लगे।"—छोकरे ने और सफाई से हाथ चलाते हुए कहा!

"खटपट-खटपट"—सिपाही ने देखा इक्का मुसाफिर खाने की ओर ही बढ़ा चला आ रहा है।

"क्यों बे साले! आज कितने पैसे कमाये?"—सिपाही ने उसी प्रकार फिर हल्की सी बूट की ठोकर देते हुए पूँछा!

"एक भी नहीं, दारोगा जी"—कहते हुए छोकरे ने अपने फटे हुए काले कोट की दोनों जेबें उलट दीं।

"खटपट-खटपट" इक्का और पास चला आ रहा था।

"अच्छा रहने दे।"—सिपाही ने लड़के को रोकते हुए कहा! फिर जूतों की चमक देखने के लिए उसने इधर पैर घुमाये!

हाथ रोककर छोकड़े ने साँस ली। पालिश डिब्बी और ब्रुश बटोर कर उसने थैले में भरे, और झोला लटका कर एक हल्का सा सलाम कर चलता बना। सिपाही बड़ी देर तक जूता घुमाता हुआ, उस पर पड़ने वाली बिजली की चमक निहारता रहा! फिर सीधे खड़े हो कर बड़ी देर तक होंठ सिकोड़ कर घुमा फिरा कर मूँछे की नोकों को ऐंठता रहा! पैन्ट की जेब से डिब्बा निकाल कर उसने बीड़ी सुलगाई और डिब्बे में जड़े हुए आयने

के टुकड़े में चेहरे को देखा ! उसे अपनी मूँछों के बाँकेपन पर कितना गर्व है, यह उस समय जैसे उसके चेहरे पर लिखा था !

"खट-पट ....."—इक्का सामने से सरपट निकल गया ! 'फट' की आवाज के साथ डिब्बा बन्द कर पैन्ट की जेब में ठूँसते हुए, कमर का डंडा निकाल हाथ ले कर शासन भरी आवाज में चीखा—"अबे रोक .....!

इक्का मुसाफिरखाने की सीढ़ियों के किनारे ही रुका। इक्का वाला सवारियाँ और सामान उतार कर पैसे ले रहा था।

"अबे साले लौटा इक्का"—सिपाही ने दूसरी आवाज दी।

इक्केवाले ने सकपकाते हुए इक्का मोड़ा।

"साले तेरा घोड़ा लंगड़ाता है।"

"नहीं हुजूर !"

"नहीं कैसे ? अभी तो मैंने देखा।"

"नहीं सरकार !"—अति विनय का स्वर इक्के वाले की आवाज में भरा हुआ था।

"नहीं सरकार के बच्चे, अच्छा दिखला चाल !"—सिपाही की त्यौरियाँ चढ़ गई थीं और भौंहें पगड़ी के छोर को छू रही थीं।

"टिक्-टिक्-टिक्—चल बेटे !"—खटपट खटपट ध्वनि ! दस कदम इक्का चला कर इक्के वाले ने पूँछा—

"देख लिया सरकार ?"

"अभी रोक क्यों लिया, जरा सरपट पार्क का एक चक्कर लगा कर दिखला।"—सिपाही ने उसी प्रकार अनुशासन भरे

स्वर में कहा—"चल बेटे चल"—इक्के वाले ने दो तीन चाबुक घोड़े की पीठ पर छोड़ते हुए कहा।

घोड़ा चाबुक खा कर सरपट भाग खड़ा हुआ। पसीने से लथपथ इक्के वाला और घोड़ा दोनों भाग रहे थे। सिपाही के मुख पर रहस्य पूर्ण मुस्कराहट खेल रही थी। मानों उसके मुँह से निकला पड़ रहा था "वाह! क्या खूब चाल है?" इक्के से लौट कर पास आते ही उसने एक्टर की तरह अपने चेहरे का यह भाव बदल लिया।

"अब तो देख लिया सरकार।"—इक्केवाले ने घोड़े की रास खींच कर उस की पीठ थपथपाते हुए संतोष भरे स्वर में कहा।

"अभी कैसे, घोड़े पर बोझ कहाँ था?"—सिपाही ने पगड़ी ठीक कर स्वयं इक्के पर सवार होते हुए कहा—"चल चौक की तरफ डियूटी खत्म हो गई है।"

"उधर तो करफ्यू....." इक्केवाले दबी जबान से संकेत करते हुए कहा।

"करफ्यू गया गधे की दुम में—चलता भी है या नहीं।"—अपने बलिष्ठ पंजे का एक रद्दा इक्केवाले की गरदन पर जमाते हुए सिपाही ने कहा।

"चल बेटे! चल-चल बेटे"—इक्के वाले का भारी सा अन्तिम स्वर मेरे कान में पड़ा, और इक्का फिर 'खटपट-खटपट' चला जा रहा था।

मैं पार्क की घेर पर पैर रखे मौन खड़ा था। मस्तिष्क में उमड़ते हुए अशान्ति के बवन्डर में एक और झोंका आया। मैं देख रहा था। यह सब क्या है ?

गेट की घड़ी की ओर दृष्टि गई। और अभी तो तीन घंटे प्रतीक्षा के शेष हैं।

\+ + +

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे प्लेटफार्म शून्य, निस्तब्ध-सा !

सामने इक्के और तांगों की लम्बी कतार ! मुसाफिरखाने की सीढ़ियों से पुरानी-सी लाठी पर अपना भार संभाले, बगल में पोटली दबाये एक ग्रामीण वृद्ध धीरे-धीरे सम्हलता सम्हलता सा उतर रहा था। कमान की तरह झुकी हुई कमर और चीथड़ों में लिपटा हुआ। सिर पर साफे की धज्जियाँ सी लटक रहीं थीं।

"ओ बुढ़ऊ किधर ?"—उसे देख कर उस ओर शिकार की घात में बैठे हुए कोचवानों में से एक तांगे वाला पुकार उठा।

"इधर आओ इधर"—बगल ही में खड़े हुए उस शान्दार इक्के वाले ने आवाज लगाई।

बुड्ढा किंचित ठिठक कर रुक गया।

"अरे ! कहाँ जाता है ?"—तांगे वाला फिर पूँछ बैठा।

"अहियापुर !"—बुड्ढे के मुख से काँपती हुई क्षीण सी आवाज निकली।

"अरे इधर आ बुड्ढे-इधर—मैं चल रहा हूँ।"

तीसरा इक्के वाला पुकार उठा !

"कितने पैसे लोगे ?"—वृद्ध ने तनिक आशा से चार कदम और बढ़ कर पूछा।

"आठ आने"—ताँगे वाले ने घोड़े की रास हाथ में ले कर उसे घुमाते हुए लापरवाही से कहा।

"आठ आने"—जैसे महान आश्चर्य ने उसे डस लिया हो। बुड्ढा झिझका और आँखें फाड़ कर तांगे वाले की ओर निहारते हुए, वह जितने कदम आगे बढ़ा था, उतने ही कदम पीछे हट कर एक ओर को चल पड़ा।

"अच्छा आओ छै आने ही देना"—दूसरे कम शान्दार इक्के वाले ने दर घटाते हुए कहा !

"नहीं मेरे पास तो छै पैसे ही हैं !"—सरलता के साथ अपनी कमर के चीथड़े की गाँठ खोलते हुए कहा।

"ओफ हो ! तब तो बड़ा इक्के पर सवारी करने वाला आया !—दो पैसे के चने ले कर चबाते चले जाना पहुँच जाओगे"—इक्के वाले ने मुस्करा कर वृद्ध पर व्यंग कसते हुए कहा।

"पैर धो कर चढ़ना होगा ?"—दूसरे इक्के वाले ने योग दे कर ठिलठिलाते हुए कहा !

वृद्ध चुपचाप व्यङ्गों को झेलते हुए आगे बढ़ा जा रहा था। मानो उसका बुढ़ापा और गरीबी चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे—हँस लो! मुझ पर जितना चाहे हँस लो! मजाक बना लो!!"

"ओ बुढ़ऊ इधर आ—अच्छा दस ही पैसा देना!" कुछ हट कर खड़ा हुआ एक चौथा इक्के वाला पुकार उठा।

आशा ने फिर वृद्ध के पैरों में बन्धन डाला। चार कदम और आगे बढ़ कर इक्के वाले को अपनी पूंजी दिखलाते हुए बोला—"नहीं मेरे पास तो छै ही पैसे हैं!

"छै पैसे?"—इक्केवान ने विचित्र ढंग से मुँह बिचकाते हुए कहा—"छै पैसे की तो तुझे बिठाने से गद्दियाँ ही मैली हो जायेंगी।"

वाक्य समाप्त करते हुए इक्केवान ने पिच से पान की पीक थूकी! लेकिन बुड्ढा अब शायद उस ओर न लौटने का निश्चय कर अनसुनी कर आगे बढ़ गया।

"अरे ओ दाऊ?"—सबसे बहिष्कृत-सा दूर एक कोने पर खड़े इक्केवान ने आवाज लगाई। मरियल से घोड़े की पीठ पर तीन चार चाबुक जमा कर, अपने बिना रबड़ की हाल के इक्के को 'खटर-खट-खड़र-खट' की बिगड़ी हुई ध्वनि के साथ बुड्ढे की ओर बढ़ाता हुआ बोला—

"आओ छै पैसे ही देना!"

सब के सब इक्के वालों की गर्दनें रोब के साथ उस ओर घूम गईं।

"ओ बे भीख माँग खा ?"—दल में से शान्दार इक्के वाला पुकार उठा !

उसकी देखा देखी दूसरे ने भी कह डाला—"क्यों बे ! क्या भूखो मरने लगा ?"

दो के सहारे तीसरे की भी हिमम्मत बढ़ी उसने ऊँची आवाज लगाते हुए कहा—"अरे ! जोरू को बाजार में बिठा दे—खूब कमायेगी ! इक्का हाँकता है साला ! !"

मैंने देखा सब एक दूसरे पर हावी थे ! फिर वह मरियल इक्के वाला भला क्या बोलता ?

बुड्ढे को इक्के पर बिठाल कर "फटर-फटर" की बेसुरी आवाज में सब की अनसुनी कर के घोड़े पर चाबुक बरसाता हुआ इक्का आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था ।

वह उन आवाजों से जल्दी से जल्दी दूर निकल भागने के लिए घोड़े की पीठ पर और भी जोर से चाबुक बरसा रहा था । घोड़े ने दो तीन बार दुलत्ती झाड़ कर अपना विरोध प्रगट किया और भाग खड़ा हुआ !

इक्के वालों की पंक्ति का एक सम्मिलित अट्टहास हवा में गूँज रहा था !

मैंने देखा मानवीय भावनाओं के पतन का एक चित्र ! पैसे ने एक दूसरे को कैसे दबा रखा है, अपने मरियल घोड़े पर वह कमजोर इक्के वाला और उसके बाद सब एक दूसरे पर हावी ! सभी अपने से कमजोर शक्ति वालों को दबाये हुए हैं ।

पूंजी के साथ सभ्यता के दावेदार भी किस प्रकार बनते जाते हैं !

"पैसा ! पूंजी ! ! कैसा विकृत स्वरूप है ! मस्तिष्क में कभी यह पहलू टक्करें मार रहा था, तो कभी वह !

मैं और अधिक उस स्थान पर न ठहर सका और फिर मुसाफिर खाने की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए प्लेटफार्म की ओर बढ़ा।

\+ + +

'टन-टन-टनन्' ध्वनि के साथ नीली वर्दी वाले सिपाही ने पीतल का घन्टा बजा कर गाड़ी के आने की पूर्व सूचना दी।

मुसाफिरखाने के यात्रियों में कुछ हलचल सी दिखाई दी। कोई साफा सम्हालता हुआ तो कोई बाक्स और पोटली सम्हाले प्लेटफार्म की ओर भाग रहा था और गेट पर आपस में वे सब एक दूसरे को धकिया रहे थे।

मैं अलक्षित-सा प्लेटफार्म की ओर बढ़ रहा था।

भक्भकाती हुई ट्रेन प्लेटफार्म को चमकाती हुई आ कर रुकी ! कलकत्ता—देहरादून एक्सप्रेस खूब भरी थी। लाल वर्दी वाले कुली जो अब तक प्लेटफार्म पर पंक्तिबद्ध खड़े थे बाज की तरह अपने सामने के डिब्बों की खिड़कियों पर झपट पड़े। खोन्चे वाले हाथों पर खोन्चा साधे—"चाय गरम, पान बीड़ी सिगरेट, मिठाई-पूड़ी, सतू, शरबत, की आवाजें बुलन्द करते हुए गाड़ी के इस छोर से उस छोर तक दौड़ रहे थे। चहल-पहल कोलाहल, अशान्ति का जीवन मित्र प्लेटफार्म !

गेटकीपर बुड्ढा सतर्कतापूर्वक यात्रियों के टिकट बटोर रहा था ! मोटे चश्मे के भीतर से उसकी वे छोटी छोटी चमकती हुई आँखें तेज हो कर लोगों को घूर रही थीं। नारियों के अवगुंठन को चीर कर वे आँखें रूप की टोह लगा रही थीं ! वह बीच बीच में दरवाजे पर हाथ अड़ा कर एक बड़े जन समूह को रोक कर पास खड़ी युवती को एकान्त दृष्टि से निहार रहा था। जब उसकी क्षुधित आँखें रूप माधुरी से भर गईं तब उसने कहीं उन्हें जाने दिया। यह अपनी गुरुता पर मुस्करा रहा था !

हृदय उसके इस आचरण के प्रति विद्रोह करने के लिए कशमशाया—लेकिन क्यों ? उसे अधिकार है रोकने का। वह अपने अधिकार से यदि लाभ उठा सकता है, तो क्यों न उठाये ? अपनी 'प्यासी' आँखों को शान्ति प्रदान कर सकता है। हर एक अधिकारी का फायदा उठाना चाहता है। आखिर इसमें नई बात ही क्या है ? मैंने भावना को दबाया—आगे बढ़ा—

भुलाने लगा उस गहन जन समूह में स्वयं को—मैं इस जनरव में डूब जाऊँ ! तेजी से टहल रहा था। वह अखबार वाला छोकरा टकरा गया—दो तीन मैगजीनें गिर पड़ीं—वह घूमते हुए बड़बड़ाया—'देखते नहीं ?'

मैंने तेजी से ओझल हो जाना चाहा ! लेकिन वह शरबत वाला, बाल वाल बच गया। उस औरत से कंधा छू गया—पति की आवाज कानों में पड़ी—अंधे हो कर चलते हैं ! जल्दी जल्दी निकल चलो ?"

"अजी ! बाबू जी यह तो रेल ठेल है"—कुली जो सामान लाद रहा था हंसते हुए बोला !

बाबू साहब अपनी उत्तेजना पर कुछ लजाये ! लेकिन मैं चलता ही गया अलक्षित-अन्तर के चीत्कार को समेटे !

फर्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने दस बारह कुली सामान पाने के लिए आपस में झगड़ रहे थे। अकेली महिला अपने सामान की छीन झपट देख कर परेशान हो रही थी।

बगल वाले फर्स्ट क्लास के डिब्बे की खिड़की से फैल्ट हैट में एक सिर झाँक उठा—'कुली-अय-कुली !!'

एक खंभे के सहारे टिका हुआ फटी सी धोती और ऊपर से फेंटा कसे हुए नंगे बदन वह व्यक्ति हुजूर कह कर लपका !

बड़े बड़े बाक्स और बन्डल वह जल्दी जल्दी अकेले ही उतारने लगा। आशा का मारा ! पूरे ६ अदद माल बड़े बड़े बाक्स बिस्तरे ! गोल्फ बेग, टैनिस रैकेट आदि के साथ उतारे ! अन्तिम बाक्स निकालते हुए उसका हाथ भी छिल गया, लेकिन उसकी बिना परवाह किये वह क्रूरतापूर्वक अपने सिर पर सामान लादने का प्रयत्न करने लगा। बड़े बाक्सों पर चिपके हुए P. & O कम्पनी के लेबिल यात्री के विदेश से आने की सूचना दे रहे थे।

सबसे आखीर में वह दाँयें हाथ में अपनी राइफल संभाले ब्रीचेज और हरे रंग का हैट और वैसा ही धूप छाँह कोट पहिने उतरा—कुली अभी तक बड़े बाक्स लादने का प्रयत्न ही कर

रहा था—देरी देख कर कुछ गरम पड़ कर वह बोला—"आ ! जल्दी करो मैन !"

"हुजूर"—!

"हुजूर !!"

"हुजूर सरकारी कुली !"

"रेलवे का कुली हुजूर"—एक साथ तीन चार कुलियों ने युवक को घेरते हुए आवाज दी युवक कुछ चमका-सा।

"हुजूर हम स्टेशन का कुली है"—एक ने अपना पीतल का नम्बर दिखलाते हुए कहा—"ये गुन्डा है साहब।"

दो तीन कुली उस सामान से लदे हुए कुली पर टूट पड़े और सिर पर से सामान छीनने लगे।

"वैल ठीक है"—पीतल के चमकते हुए बिल्ले देख कर विश्वास के साथ युवक ने कहा—"यू डैमिड गैट आऊट !"

साथ ही साथ उसकी पीठ पर साहब की बन्दूक का ठूँसा पड़ा। कमर पकड़ कर वह एक ओर हट कर जा खड़ा हुआ। अपने परिश्रम का फल दूसरों के हाथों में जाते देखने लगा।

तीनों कुलियों ने दो-दो अदद सामान उठाया। आगे आगे कुली और पीछे वह एक हाथ में राइफल लटकाए दूसरे हाथ से पाईप सुलगाये।

गेट के पास पहुँच कर उसने अपना हैट कुछ ऊपर खिसका कर पर्स से टिकिट निकाला और तब मैंने तेज रोशनी में उसे एकाएक पहिचाना !—

"ओह गिरजा"—मेरे मुंह से शब्द एक आवेग के साथ निकले लेकिन उनका वेग अन्त में दब गया और घबड़ाहट के साथ उसे देख कर कहीं देख तो नहीं लिया ? मैंने उस ओर से मुंह फेर कर Visit Kashmir वाले पोस्टर पर दृष्टि गड़ा दी।

"गिरजा—वही गिरजा जो मेरा सहपाठी था कभी। सभी उसे होनहार कहते थे—पैसा था पास होता गया चला गया विलायत और अब आई० सी० एस० कर के लौट रहा था !—आज वह आया है भारतीय आत्मा बेच कर। विचारों के बवन्डर से टकराते हुए मैंने सोचा—भार सा लिए हुए शब्द निकल पड़े मुख से—"गिरजा तुम क्या हो गये ?"

\+ \+ \+

बिजली की बत्तियों से जगमगाता रेलवे प्लेटफार्म फिर शून्य, निस्तब्ध-सा—

'व्हीलर' की बुक स्टाल पर वह बुड्ढा अब भी दूकान खोले बैठा था। उसके चारों ओर की अलमारियों में सजी हुई चमकदार रंगीन आवरण की आकर्षक पुस्तकें—सामने काउन्टर पर देशी विदेशी पत्र और पत्रिकाएं। बड़े बड़े पोस्टर दर्जनों न्यूज पोस्टर—

Hindustan Times

"थेटिस का अन्त—९७ आदिमयों की जल समाधि"।

न्यूज पोस्टर पर बड़े मोटे मोटे भद्दे अक्षर चमक रहे थे अपनी कालिमा में पैशाचिकता की छाप लिए !

आज सबेरे ही तो पढ़ा था—सारा ब्रिटेन इस दुर्घटना पर बौखला उठा था। आखिर ९७ जानों का जिम्मेवार कौन? ब्रिटिश प्रधान मन्त्री से ले कर उस जहाज के मालिक तक, जनता का एक ही प्रश्न था! उन जानों का हर्जाना..... कौन भरेगा?.....

तुरन्त ही आँखों के सामने तेजी से अनेकों सघन चित्र नाचने लगे, कितने भिखमंगे, मजदूर किसान श्रमजीवी औरतें और बच्चे आज गरीबी के शिकार हैं—पेट की भूख ज्वालाओं में झुलस रहे हैं—आक्रान्त जीवन अभिशाप बन गया है जिनका जीवन, प्राणों की आहुति चढ़ा जीते जी समाधि ले लेते हैं—यह सब जो कुछ दिखाई दे रहा है क्या है—यही घटनाएँ दुर्घटनाओं की सृष्टि करती हैं—कितनी दुर्घटनाएँ कितनी अकाल मृत्युएँ, कितनी निरीह मौतें होती हैं—चारों ओर वातावरण में वे आत्माएँ चीत्कार कर रही हैं—कोई सुनता है? आखिर इन जानों का जिम्मेदार कौन है? लेकिन उनकी सुनता कौन? उनके जीवन का—गुलामों के जीवन का मूल्य ही क्या? उनके मस्तक पर पराधीन भारत में पैदा होने का कलंक जो लगा है।—

"लेकिन इन्हें चिल्लाने का क्या अधिकार?—कलेजा भीतर ही भीतर मरुड़ गया। पोस्टर के वे काले अक्षर मेरे आँखों के सामने श्वेत पत्र पर कलंक के काले धब्बों के समान तैर रहे थे। उन्हीं में तो यह चीख पुकार भरी है।"

"नहीं इन्हें चिल्लाने का कोई अधिकार नहीं!"

एक आवाज फिर उठी। मैं बुक स्टाल की शो-टेबिल के बिल्कुल समीप पहुँच गया था।

बुड्ढे ने अर्थ भरी दृष्टि से मुझे घूरते हुए पूँछा—"क्या खरीदियेगा, सब बिल्कुल ताजे हैं।"

मैं बिना कुछ उत्तर दिये समाचार पत्र और रंगीन पत्रिकाओं के आवरण उलटने लगा और आँखें Nude मैगजीन के मुखपृष्ठ पर छपी एक नंगी नारी की तस्वीर पर गड़ा दीं।

उधर दूसरा हाथ स्वयं ही काऊन्टर टेबिल की आड़ में लगे न्यूज पोस्टर पर जा पहुँचा! अँगुलियाँ अनायास ही जैसे अपना काम कर रही थीं।

"बाबू जी यह मैगजीन तो आज कल कालेजों में खूब चलती है।"

"हूँ"—उसके शब्द मेरे कान के पर्दों पर भिनभिना रहे थे और मैंने एक दूसरी ही दुनियाँ से अनजाने ही कह दिया!

और यह देखिये 'लन्डन-लाइफ' का स्पेशल नम्बर अभी कल ही आया—आप पसन्द करेंगे। कहते हुए नीचे की शेल्फ में अङ्क ढूँढ़ने की कोशिश की।

इधर मेरी अंगुलियाँ अपना काम कर चुकी थीं 'न्युज पोस्टर' फ्रेम से खिसक कर हाथ में आ गया था। मैंने मुट्ठी से तोड़ मोड़ कर उसे पजामें के पाकेट में ठूँस लिया। और इससे पहिले कि वह मुझे और रोके चल पड़ा। 'अरे! कुछ लीजिएगा

नहीं ?" उसने उसी प्रकार लण्डन लाइफ का विशेषाङ्क टटोलते हुए कहा—कम से कम देख तो लीजिए ?"

"नहीं कल देखूँगा।"—कहते हुए मैं और भी तेजी से चल पड़ा। दूसरा हाथ मैंने पजामें के उसी जेब में ठूँस लिया था और प्लेटफार्म के उस अंधेरे कोने की ओर बढ़ा चला जा रहा था।

एक अंधेरे कोने में पहुँच कर मैंने उस तोड़ मोड़ पोस्टर को जेब से निकाल कर फैलाया। अक्षर अब भी सफेद कागज पर अपना वीभत्स रूप लिए काले-काले दांत से काढ़े चमक रहे थे मैंने देखते ही देखते बीच से पोस्टर को फाड़कर दो किया फिर चार फिर आठ और फिर सैकड़ों चिन्दियों में बदल कर हाथ से एक गोला-सा बना कर उसे रेलवे लाइन पर फेंक दिया।

बड़ी देर तक खड़े खड़े उस गोले को एक स्वप्नावस्थित-सी अवस्था में खड़े-खड़े निहारता रहा।

थोड़े ही समय पश्चात एक एंजिन आग उगलता शंटिंग के लिए लाइन पर से गुजरा! मैं डरा सा कहीं किसी ने देखा तो नहीं हृदय इस प्रकार कांप गया जैसे अभी अभी किसी शिशु की हत्या करने के लिए उसे मैंने लाइन पर फेंका हो। आग की एक चिनगारी उस कागज के गोले पर पड़ी वह भभक उठा, हलका सा धुआँ देकर दो तीन क्षीण सी लपटों में—और कुछ क्षण प्रकाश फैला कर—खाक!

'बस अब ठीक है।—अब कोई खतरा नहीं, मैं अपनी क्षुद्र सफलता पर एक बार पूर्ण संतोष के लिए उस सूने कोने में जोर से हँसा ! और मेरी हँसी की ध्वनि मानों मेरे ही कानों में लुप्त हो गई।

फिर उसी प्लेटफार्म की परिधि में चक्कर काटने लगा।

\+ \+ \+

रेलवे प्लेटफार्म शून्य, निस्तब्ध-सा !

बाहर मुसाफिरखाने में छाई हुई अखण्ड शान्ति —

गेट के बगल में बुड्ढे टिकिट कलेक्टर ने अपने शिकारों को खड़ा कर रक्खा था।

वे सब एक पंक्ति में किसी कला शिल्पी द्वारा गढ़ी हुई दरिद्रता की सजीव मूर्तियों के समान अचल खड़े थे और बुड्ढा कंधे पर पंच लटकाये उनके सामने फौजी जैनरल की तरह तन कर खड़ा था।

सर्व प्रथम उसने उस दस वर्ष के छोकड़े के कान पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचते हुए पूँछा—

"कहाँ से आ रहा है ?"

कान खींचने से लड़के की आँखों में आँसू भर आये।

"अबे ! बोलता है कि नहीं ? हरामी के बच्चे बोल ?"—लड़के के गाल पर चाँटा छोड़ते हुए बुड्ढे ने पूँछा।

'.....'— लड़का फिर भी मौन था। आँखों में अश्रु भरे

वह होंठों तक आ जाने वाली रुआस को जोरों से दबाये हुए था।

'खाल इस पोटली में क्या है।"—लड़के की बगल में दबी पोटली की ओर इशारा करते हुए कहा।

लड़के ने बगल में दबी हुई पोटली आहिस्ते से खोल दी—बाजरे की सूखी रोटी के ढाई टुकड़े।

वृद्ध के चेहरे पर घृणा के भाव मूर्त हो उठे। लड़के के कान पकड़ उसे गेट के बाहर ढकेल दिया।

लड़का भयातुर सा ताकता हुआ गालों पर आँसू की बूँदें दलकाये फाटक की ओट हो गया!

"अब तू दिखला? तेरी जेब में क्या है?"—बुड्ढे ने दूसरे छोकरे की ओर मुड़ कर उसकी सफेद बटनों वाली वास्कट की जेब में हाथ डालते हुए पूँछा।

दाये तरफ की जेब से ताश के पत्तों की एक छोटी सी जोड़ी। और बाये ओर की जेब में हाथ डालने पर निकले तीन पैसे और बीड़ी सिगरेट्स के कुछ अधजले टुकड़े! 'छी-छी-छी" कर मुँह बिचका कर उसने हाथ झटक कर उन टुकड़ों को प्लेटफार्म पर फेंक जूते से उन्हें मसलते हुए कहा—

"साला अभी से बीड़ी पीता है?"

पीले पीले दाँत खोलते हुए लड़के ने कहा—

"नहीं बाबू जी!"

"जा-जा भाग जा—पाजी हरामजादे"—बुड्ढे ने छोकरे की गर्दन पकड़ नियमानुसार बूट की ठोकर लगा कर बाहर निकालते हुए कहा।

वह छोकड़ा बड़ी खुशी से सलाम कर अपने बगल और कपड़े सभालता हुआ फाटक से बाहर हो गया।

दोनों छोकड़ों को बाहर निकाल कर अब उसने बाकी की ओर नजर दौड़ाई। आधे मिनट तक चुपचाप उन सबका अध्यन कर लेने के बाद उसने उन दो साधुओं के बगल में बैठे हुए उस अधेड़ की ओर हाथ के पंच से इशारा करते हुए पूँछा—

"क्यों कहाँ से आता है?"

"बाबू जी सहारनपुर से!"—उसने खड़े खड़े चुपचाप उत्तर दिया।

"टिकिट क्यों नहीं खरीदा?"

".....बाबू जी आप ही—" वह कुछ कहते कहते रुका।

"हाँ-हाँ कहता आप ही माई-बाप हैं—बाबू जी इससे छोड़ देंगे क्यों ना?"—रहस्य भरी मुस्कराहट के साथ बुड्ढे ने अपना चश्मा ठीक करते हुए कहा—फिर कुछ देर मौन रह कर सिर से पैर तक निरीक्षण करते हुए—

"अच्छा तेरे पास क्या है?"

"कुछ नहीं हुजूर!"—

"अच्छा देखता हूँ—कहते हुए बुड्ढे ने उसकी बड़ी की

जेबों में हाथ डाले। दोनों जेबें खाली थीं। सिर का साफा झटके से खींचा उसका एक सिरा प्लेटफार्म की धूल झाड़ने लगा। लेकिन वह भी छूँछा।

लेकिन बुड्ढा हताश नहीं हुआ—उसने अपनी रहस्यमय और को और भी गंभीरमय बना कर कमर के फेंटे पर गहरी दृष्टि डालते हुए कहा—

"अच्छा कुछ नहीं तेरे पास.....?"

"कुछ नहीं साहब?"—उत्तर मिला "अच्छा धोती खोल?"

अधेड़ ने भय और हिचकिचाहट के साथ इधर उधर देखा। बगल में दो साधू और थोड़े ही हट कर वह तरुणी भी सिसकती स्वप्न में डूबी सी बैठी थी जो आँखें फाड़ यह तमाशा देख कर बार बार भय से काँप कर दीवाल में सिकुड़ी जा रही थी।

"सुनता नहीं धोती खोल?"—बुड्ढे ने कड़कते हुए पूर्ण शासन भरे स्वर में कहा।

वह कुछ हिला डुला फिर कुछ रुक गया। तब बुड्ढे ने टिकिट चैक करने की डेढ़ पाव वजन की पंच उसके हाथ पर कस कर मारी। हाथ सुहलाते हुए उसने दीवाल की ओर मुंह करके धोती की फेंट खोल दी। "धोती झाड़"—बुड्ढे ने उसी तेजी से कहा 'खन-खन-खन' तीन रुपये फेंट में से टपक पड़े। बु[illegible] का चेहरा हर्षातिरेक से खिंच उठा और आवेश में आ कर

वह बोला—"वह देखो—हमसे चाल चल रहा था—यहाँ पता नहीं इसी में बाल सफेद किये हैं।"

बुड्ढे ने रुपयों को उठा कर पाकिट के हवाले करते हुए कहा—"अच्छा छोड़ता हूँ भाग जा नहीं तो फिर पुलिस में दूँगा।"

उस अधेड़ ने अपनी धोती सम्हाली और फेंट कसता हुआ फाटक से बाहर हो कर रात के गहरे अंधकार में विलीन हो गया।

"अच्छा साधू जी महाराज आप कहाँ से आ रहे हैं?"—टिकिट कलेक्टर ने उन दो साधुओं की ओर दृष्टिपात किया जो दीवाल के सहारे चिमटा और झोला टिकाये बैठे थे और वैराग्य भाव से घटनाओं को देख रहे थे। एक बुजुर्ग था जिसके सिर की लटें कन्धे से नीचे लटक रहीं थीं और दूसरा युवक सिर पर सफेद कपड़ा बाँध कर माथे पर वैष्णवी तिलक लगाये था।

"हरिद्वार से—देखो बच्चा हम तो साधू हैं।"—बुजुर्ग साधु ने कहा।

"लेकिन साधु जी महाराज आप कोई हों मैं किसी को छोड़ता नहीं।" बुड्ढे टिकिट कलेक्टर ने अफसराना ढंग से कहा।

"देख बच्चा हमने बारह साल हरिद्वार और हिमालय की खाक छानी है।....."

"तो इससे क्या·····" बुड्ढे ने बीच ही में कुछ उबलते हुए कहा।

"और अब बारह बरस बाद हम इस ओर आ रहे हैं।"

"तो हमारे लिए क्या बाँध लाये?"—उसी गर्मी से बुड्ढे ने कहा।

"क्या बाँध लाए—हमारे पास क्या रक्खा है—लेकिन हम कुछ ऐसी चीज दे सकते हैं·····"

"मैं कुछ समझा नहीं·····" बुड्ढे ने बीच ही में बात काट कर कहा। कुछ कौतूहल सा—

"ऐसी चीज जो—किसी को नहीं मिल सकती?"

"अच्छा महाराज?"—आश्चर्य के साथ बुड्ढे का स्वर एक दम बदल गया अर्थ भरी दृष्टि से उसने दोनों साधुओं को घूरते हुए कहा।

"तेरा भाग्य हमें अच्छा दिखाई देता है।"

"क्या महाराज"—बुड्ढे का स्वर नरम और जिज्ञासा से आपूर्ण था।

"देखो हमारे पास तीन ताबीज हैं!"

ताबीज की बात सुन कर बुड्ढे की जिज्ञासा बढ़ी। लेकिन वह युवक साधु जो अब तक मौन था बोल उठा—"लेकिन उनमें तो मधुपुर महाराज। सेठ भीकम और जज साहब के लिए है।"

"नहीं तू क्या जाने यह भी भगत है देखो"—बगल के

थैले से टटोल कर तांबे का एक तावीज निकाल कर साधु बोला—इसे दाहिने हाथ के बाजू पर बाँध लोगे तो जो भी मनोरथ होगा कैलाशी की कृपा से पूर्ण होगा।"

बुड्ढे ने इस बार बड़े मनोयोग से गरदन हिलाई।

"अच्छा लो—इसे होशियारी से रखना"—साधु ने तावीज हाथ में दे कर आशीर्वाद के ढंग पर हाथ उठा कर कहा और झोला चीमटा उठाते हुए बोले—"अच्छा अब हम चलते हैं बच्चे।"

दोनों साधु फाटक से बाहर निकल रहे थे भस्म से लिपटे हुए उनके नंगे पैरों में गति थी। बुड्ढा तावीज हाथ में लिए उसे गौर से देख रहा था। फिर उसे पैन्ट की जेब में हिफाजत से रख लिया।

सबसे आखीर में वह अकेली युवती दीवाल से सटी अपनी पुरानी धोती में लाज समेटे बैठी थी। आतंक और भय से व्यस्त उसकी आँखें इधर उधर दूर तक निहार रहीं थीं।

बुड्ढा चार कदम बढ़ कर ठीक उसके पैरों के पास जा कर पंच घुमाता हुआ खड़ा हो गया। उसने भौंह से नेत्रों को ऊपर उठाते हुए टिकिटि कलेक्टर की ओर देखा।

"कहाँ से आती है?"—बुड्ढे ने उसके मुख पर अपनी आँखें गड़ाते हुए पूँछा!

"....." मौन केवल वह निहार रही थी।

"कहाँ से आ रही है?"—स्वर में कुछ अधिक दृढ़ता ला कर उसने फिर पूँछा।

"गाँव से·····"धीमी सी आवाज उसके मुंह से गूँजती सी निकली।

"कौन गाँव से ?"

"हरियाना पुरवा !"

"यहाँ कहाँ जायेगी ?"

"यहीं यहीं शहर में !"—कुछ टूटता सा स्वर।

"यहीं लेकिन किस मुहल्ले में ?"

"यहीं शहर में"—नजीराबाद।

"युवती कहाँ जायेगी कुछ पता है ? कौन है यहाँ तेरा ?"

"हमारे जीजा हैं !"

"टिकिट क्यों नहीं लिया ?"

"....." अत्यत घबराई सी आँखें वह चुप थी !

"देखो बिना टिकिट वालों को सजा होती है।"

युवती काँपी ! उसका चेहरा भय जैसे मूर्त हो कर नाच उठा भटकी भटकी सी आँखें—

तेरे पास कुछ है ?"

"कुछ नहीं !"

"खैर, लेकिन जायेगी कहाँ इतनी रात"—

"....." इस प्रश्न पर युवती सिहरी जैसे अबकी उसकी आँखें स्वयं प्रश्न पूँछ रही थी कहाँ जाऊँ ?

"खैर कोई बात नहीं मैं तुझे छोड़ सकता हूँ—लेकिन जायगी कहाँ तू—स्वर को कुछ बना कर वह उसी प्रकार

उसकी आँखों में धँसते हुए कह रहा था ! फिर कुछ ठहर कर—रात कौन ले जायगा तुझे ! ये इक्के टाँगे वाले इन पर न जाना इन लोगों का पेशा है न जाने कहाँ ले जा कर मुसलमान बना लें। ये सब पक्के गुन्डे हैं—उड़ा ले जायँगे।"

युवती काँप कर एक बार सिर से पैर तक सिहर उठी।

"तो.....फिर यहीं"

"नहीं कभी नहीं मुसाफिरखाने में। यह तो चोर उचक्कों का डेरा है। तेरे गहने तक न छोड़ेंगे। अच्छा चल उठ मेरे साथ।"

भय और आतंक के प्रभाव में युवती खिंची सी भूली भूली सी झिझक कर उठ खड़ी हुई। बुड्ढा प्लेटफार्म के दूसरे छोर की ओर चल पड़ा वह भी खिंची खिंची सी भयभीत उसके पीछे चल दी। उस दूसरे कोने में एक छोर के प्रकाशित लेकिन बंद दरवाजे को खोल कर मैंने उन्हें उस कमरे में घुसते देखा।

उलझा उलझा मैं और मेरे पैर अलक्षित से उसी ओर मुझे घसीटने लगे—मैं बढ़ रहा था। उसी ओर प्रकाशपूर्ण द्वार की ओर जहाँ मैंने युवती की छाया को विलीन होते देखा है। पैर स्वयं चलित से और मस्तिष्क भावनाओं के घटाटोप से और भी सघन हो कर अशान्ति घोर अशान्ति का सृजन कर रहा था।

प्लेटफार्म शून्य निस्तब्ध !

\+ \+ \+

रेलवे प्लेटफार्म शून्य निस्तब्ध सा—

दूसरे छोर के अंधकार को भंग करने वाली उस प्रकाश पूर्ण बन्द दरवाजे की मन्द रोशनी—द्वार पर लिखा था।

"Retiring room for rly. clerks only"

मैं कुछ पग हट कर दरवाजे के ठीक सामने खड़ा था।

कमरे से फूटता हुआ तीन चार व्यक्तियों के स्वर का समवेत अट्टहास शीशियों की खटपट-कांच के ग्लासों की टकराहट, झनझनाहट बीड़ी और सिगरेट्स का धुँआँ फूट कर बाहर निकल रहा था। एक काँच के उस पार बुड्ढे की केवल खिचड़ी बालों वाली मूंड़ दिखाई दे रही थी—जो बार बार बातचीत के सिलसिले में लहर के समान डोल रही थी।

"क्या खूब—कहा"

"अरे यह धनी चचा भी खुर्राट हैं। लेकिन चचा..... खूब लाये....."

"और क्या तुम नौजवानों सरीखी बेवकूफी करता हूँ—जो झाँसा दे जाये—हमेशा टापते रह जाते हो।"

"क्यों सिंह—अरे तुम तो परसों रात नहीं थे—परसों रात वह दिल्ली वाली क्या कमजोर थी?"

"लेकिन वह थी चलती रकम 'फ्लर्ट'—उसमें क्या"—मोटी भी सी आवाज!

"अरे जरा आँखें खोल कर देखो तो....." बुड्ढा जोरा

से झूमता कह रहा था—ओ ओ इधर आ-इधर……।" होठों से लगा ग्लास खाली कर टेबिल पर बजाते हुए—इधर आओ…

"क्यों भगत 'सिक्स—अप' का सिगनल हो गया क्या ?"

खिड़की से एक चेहरा झाँकता है—'अभी नहीं !'

"अरे जरा मनाइये धनी चाचा……"

"अरे भाई …इधर नजदीक आओ… इधर आती है कि नहीं……" कुर्सी से कुछ उठते हुए !

चूड़ियों और गहनों की आहट सी होती है।

"अरे—खड़ी रह गई—डरो मत हम कोई जानवर नहीं हैं आदमी हैं …शरीफ बाबू लोग—देखो यह "सरदार जी हैं यहीं छोड़ सकते हैं—इधर आ……"

फिर पैरों के आभूषण खनकते हैं। वह अपने में सिमिटी-सी, पीठ ही पीठ दिखाई देती है।

"इधर देख, यह बोतल खोल—और यह लाल पानी सबके ग्लासों भर… "

युवती अचल, अडिग-सी खड़ी रहती है !

"देखो जैसा कहते हैं—चुपचाप वैसा किये जा, तभी छूट सकती है। इन सरदार जी को देखती है—अच्छा तो खोल बोतल……।"

पीठ पर की धोती हिचती है। चूड़ियों की झनझनाहट—फिर ग्लासों के साथ उनके टकराने की खन् खन्……खन्न् ध्वनि……

"अब देखिये सरदार जी।"

"है तो खूब भाई लेकिन साक़ी बहुत भोला है! गजब का भोलापन है--मार डाला"--वही मोटी भद्दी सी आवाज़!

"ये क्या है? तेरे हाथ में आँय.....ये गोल गोल क्या क्या हैं?--दिखलाना हाथ इधर क्या हैं....."

"हमारे यहाँ तो पटले बोलते हैं।--लेकिन वह मौन किन्तु यन्त्र संचालित सी।

चूड़ियों की झन झन खन खन फिर-फिर हर एक का अलग अलग अट्टहास।

बाहर दूर से घंटी की घनघनाहट बाहर की स्तब्धता को भंग करती हुई कमरे में टकराती है--

"यह किसकी घंटी बजी--देखना पीटर क्या सिक्स अप?"

"हाँ! सिक्स अप--तुमने बतलाया नहीं भगत।

कुर्सियों के खिसकाने और जूतों की चरमर ध्वनि फिर खन-खनाहट। वह अस्थिरतापूर्वक इधर उधर सिर हिलाती है।

भकभकाती ट्रेन पटरियों पर अपना स्वच्छ प्रकाश फेंकती हुई चली आ रही थी।

वे सब के सब कोई तो कपड़े पहिनते कोई हैट सम्हालते हुए तेजी के साथ उस कमरे से बाहर निकले!

"अच्छा इस गाड़ी के बाद हम वापिस आयेंगे तो तेरा इन्तजाम कर देंगे।" कहते हुए सबसे अन्त में बुड्ढा निकला

दरवाजा बन्द कर उसने चाभी लगाई और एक क्षण रुक कर बीड़ी सुलगाई, सलाई के प्रकाश में उसकी वे सूनी खुली हुई वैशाखिक आँखें लाल लाल चमक रही थीं—जिनमें एक गहरी सूखी प्यास.....शायद कभी न बुझने वाली प्यास, झाँक रही थी।

वह तेजी से लपक कर फिर अपने स्टूल पर जा बैठा।

पत्थर के समान खड़े मैंने—अनुभूति और बवंडर में बहते हुए सब कुछ देखा और अब भी खड़ा था प्लेटफार्म के किनारे वही पत्थर का पत्थर, कमरे में अंधेरा था!

+ + +

प्लेटफार्म अशान्त कोलाहल पूर्ण, मुसाफिरों की भाग दौड़—

सिक्स अप एक्सप्रेस की हैडलाइट की तेज रोशनी ठीक चेहरे पर पड़ी—ऐंजिन की गर्म हवा का एक झोंका सा मेरी पीठ में लगा और मैं दो कदम आगे हटा—मुड़ कर देखा।

गाड़ी खूब भरी थी! खिड़कियों से अनेकों सिर झाँक रहे थे। डिब्बों के दरवाजों पर टूटते हुए मुसाफिर और समान के सिर पर ढेर लगाये हुए कुली! सैकड़ों आवाजें कानों के पर्दे फाड़ रही थी।

मेरे सम्मुख गाड़ी का जो डिब्बा आ कर लगा वह असाधारण रूप से लम्बा चौड़ा था। जिसके दरवाजे पर सफेद कार्ड लटक रहा था और अंकित था—

"Reserved for military service"

दर्जनों ग्रामीण युवकों के कौतूहल भरे चेहरे डिब्बे की खिड़कियों से झाँक रहे थे ! बहुत से भीतर बेन्चों पर से जल्दी जल्दी अपना सामान समेट रहे थे।

"इस तरह से क्या झाँकते हो तुम लोग क्या शहर नहीं देखा—अब देख लेना बड़े शहर बम्बई कलकत्ता पेशावर काश्मीर अब मिलेंगे देखने को—जल्दी सामान उठाओ निकलो एक कतार बाहर क्या समझा तुम सबने।"

डिब्बे के भीतर से ही एक खरखरी सी भद्दी आवाज सुनाई दी। आज्ञा के साथ झाँकते हुए वे दर्जनों सिर फिर एक साथ भीतर घुस गये। वे सब एक दूसरे को धकियाते हुए चिल्ला चिल्ला कर अपने अपने सामान की तलाश कर, उसे समेट रहे थे।

झपाके के साथ सबसे पहिले दरवाजे से वह अधेड़ व्यक्ति निकला जिसके सिर पर कुल्लेदार खाकी साफा, एक लम्बी कमीज जो उसके पैन्ट को ढँके थी। मूँछें उसकी असाधारण रूप से काली और बड़ी दिखाई दे रहीं थीं और रोशनी में उन पर चमकता हुआ रोगन दिखाई दे रहा था। हाथ में सिर से ऊँचा एक डंडा जिसके शीर्ष भाग में एक खपची-सी पिरोई हुई थी। चाकू से काट कर जिस पर इंच और फुट के निशान बना लिए गये थे ! डंडे को वह कंधे पर रख कर काफी ऊँचा उठाये दरवाजे के सामने तन कर खड़ा हो गया !

कुछ भागते हुए कुली और मुसाफिर उसी दरवाजे की ओर बढ़े आ रहे थे। उन्हें दरवाजे की ओर बढ़ता देख कर अपने सफेद सफेद दाँत काली मूँछों के बीच से दिखलाकर भौंहें चढ़ाते हुए वह चिल्लाया—देखते नहीं यह फौजी डिब्बा है—मिलटरी के वास्ते रिजर्व है।"

हताश हो कर वे सब के सब फिर पीछे की ओर लौट कर दौड़ पड़े।

"निकलो तुम लोग निकलो—देरी होती है।"

एक के बाद एक वे दरवाजे से बाहर निकले! तन पर कोई कुरता पहिने कोई कमीज, और ऊँची ऊँची ग्रामीण ढंग की धोतियाँ बाँधे, सिर पर किसी के टोपी तो कोई साफा ही बाँधे था और गमछा ही लपेटे था। बटन होल से लटके हुए सीने पर छोटे सफेद कार्ड जिन पर नीले पेन्सिल से उनका रिक्रूटिंग नम्बर लिखा था! बगल कोई पोटली तो कोई अपना छोटा सा सन्दूक ही दबाए और वह जमादार हाथ में नाप लिए उन्हें बार बार चिल्ला कर लाइन में खड़ा होने के लिए कह रहा था, लेकिन उनकी वे कौतूहल पूर्ण आँखें इधर से उधर प्लेटफार्म पर भटक रहीं थीं, वहाँ की हर एक चीज, हर एक दृश्य उनकी आँखों में कौतूहल की भाँति व्याप्त हो कर रह गया था।

एक पंक्ति में उन्हें खड़े कर जमादार के मुख से आज्ञा निकली—"सामने सामने रक्खो!"

अनभ्यस्त से हाथों से उन्होंने एक दूसरे का मुंह निहारते हुए सामान प्लेटफार्म पर रख दिया।

"देखो इस तरह काम नहीं चलेगा—ढोर चाल नहीं है—ये फौजी कायदा है—सब काम एक साथ होना चाहिए"—जमादार ने अपने सीने के तमगे को ठीक करते हुए कहा!

"अटैंशन"—नाप को प्लेटफार्म पर बजाते हुए उसने आज्ञा दी.....

"अरे! उधर क्या देखता है खोन्चे वाले को सब सीधे सीना तान कर खड़े होओ—तुम लोग जंगली हो कितनी बार बतलाया 'अटैंशन' में सीधे सीना तान कर खड़े होना पड़ता है। खीझते हुए वह बोला।

जेब से एक सफेद कागज की फर्द निकाल कर हर एक के सामने खड़े हो कर नम्बर की जाँच करते हुए उसने फर्द पर निशान लगाना शुरू किया—हर एक की ठुड्ढी पकड़ ठीक खड़े होने की शिक्षा भी देता जाता था—और वे सब बेजान चेतना शून्य से खड़े उसे केवल निहार भर रहे थे—वह उनका भाग्य विधाता—"पूरे इकतालीस"—आखिरी को गिनते हुए उसने आप ही आप कहा—

"सामान उठाओ कंधे पर"—

सब फिर अपना सामान उठाने लगे, पंक्ती फिर बिगड़ गई—

'खट-खट-खट' नाप बजाते हुए वह चिल्लाया—अरे बेवकूफो ठीक से—अच्छा मार्च—"

सब के सब एक कतार में चल पड़े उसके पीछे पीछे एक दूसरे को धकियाते धुस पुसाते—जोयों ढेलों की ओर झुक झुक कर निहारते हुए

इकतालीस पाँव चल रहे थे, शिथिल से लटपटाते—नंगे अधनंगे पैर रंगरूटों के·····

उन पाँवों की हिचकिचाहट डगमगाहट और बिगड़ी हुई आवाज में उनकी अवांछनीय पुकार आ रही थी - वे पैर जैसे पीछे लौट जाना चाह रहे थे – घर की ओर—

वे मुड़मुड़कर उस गाड़ी की ओर देख रहे थे जो घर से उन्हें इतनी दूर ले आई थी, फिर भी वे आगे बढ़ रहे थे—

उनके पग घिसटते हुए से आगे की ओर खिंचे जा रहे थे—और उन पाँवों की विरोध सूचक वह बिगड़ी हुई गुमुल ध्वनि प्लेटफार्म पर गूँज रही थी—असख्य विद्रोह भरे पग रंगरूटों के—

गार्ड ने न जाने कब हरी बत्ती दिखला दी—उन पैरों की ओर उलझी हुई आँखों से मैंने देखा गाड़ी सीटी दे कर चल रही है।

चलती हुई गाड़ी के एक दरवाजे का हैंडिल मैंने पकड़ लिया।

"अयँ वह सैकिन्ड क्लास—तुम्हारा टिकिट·····" उस सफेद वर्दी वाले टिकिट चैकर ने कुरता पकड़ कर मुझे उतारना चाहा—

"वह ···वह तो नहीं"—मेरे मुख से निकला।

झटके से कुरता छूट गया। वह वैसे ही हाथ बढ़ाये स्तब्ध खड़ा था।

मैंने भीतर घुस कर दरवाजा बन्द कर लिया। और खिड़की से सिर निकाल कर देखा, गाड़ी तेजी से प्लेटफार्म छोड़ रही थी।

वे संकट स्वप्न से गेट पार कर रहे थे—प्लेटफार्म अपना बीभत्स रूप लिये बिजली की बत्तियों के असंख्य दाँत चमकाता हुआ जैसे पीछे पीछे काटने को दौड़ रहा है। लेकिन मैं उसे देखता रहा, जब तक उसकी बत्तियों की झिलमिलाहट आँखों के सामने रही।

फिर अन्धकार बाहर भीतर और उस अन्धकार में चलता हुआ प्रबल तूफान जो झकझोरे डाल रहा है झिंझोड़ रहा है।

जिसमें मेरे होश उड़ रहे हैं, मैं लड़खड़ा रहा हूँ— आज तक की संचित शक्ति साथ छोड़ रही है—और तब मैं उस गद्देदार बर्थ पर औंधा लेट गया।

युद्ध के बादल

रणमत्त संसार—

राष्ट्रों की शक्ति ने विश्वशान्ति को चुनौती दी। सम्राटों और डिक्टेटरों के कागजी अल्टीमेटम भड़क उठे कागज के पन्नों से युद्ध की लपटों में! विप्लवी ज्वालाओं में झुलस उठी विश्वशान्ति—

शान्ति को रौंदती हुई सेनायें निकल पड़ीं—सदोन्मत्त, राजपथ, सड़कों पर गली और कूचों में, मैदानों पहाड़ों में—

वक्ष पर बख्तरों और तमगों की जगमगाहट चमचमाती सैकड़ों लाखों रक्त की प्यासी संगीनों की कतारें सैनिकों के कन्धों पर। जिनकी पगध्वनि से धसकती हुई जमीन और कम्पित सा आसमान।

क्षण प्रतिक्षण बढ़ती हुई सैनिकों की लम्बी लम्बी कतारें—

+ + +

और उधर—

राज सभा भवन के सामने हजारों और लक्षों की संख्या में नागरिक खड़े हुए, प्रतीक्षा में निर्णय चेहरों पर अशान्ति के लक्षण, लेकिन अशब्द मौन—आपस में फुसफुसाहट उन निर्णायक क्षणों में.....

सामने द्वार पर सशस्त्र सैनिकों का पहरा मोटर साइकिलों पर आरूढ़, संदेशवाहक—पत्रकार कैमरा मैन।

बीच खाली रास्ते से गुजर कर राजसभा भवन की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मंत्रिगण, चेहरों पर विचार मग्नता का गहरा भाव—संदिग्ध सी दृष्टि, सिर झुकाए।

अन्त में राजदूत की मोटर रुकी सामने। मोटर से निकल कर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए राजदूत के कम्पित पग, बगल में पोर्ट फोलियो जिसमें भाग्य निर्णायक 'अल्टीमेटम'।

भीतर विशाल ड्राइंग रूम में मेज और कुर्सियों पर बैठे व्यक्ति के कानों पर चढ़ा हुआ इयर फोन जो क्षण प्रतिक्षण संसार की परिस्थिति को तौल रहा था।

"बर्लिन एम्बेसडर—कुछ नहीं हो सकता—सेनायें बढ़ रही हैं—विरोधपत्र का कोई उत्तर नहीं।".....

दूसरे ही क्षण युद्ध के दूत की तरह राजदूत का प्रवेश—सबकी आँखें उसी ओर.....शिष्टाचार अभिवादन—

पोर्टफोलियो से कागज निकाल कर काँपते हुए हाथों से उसने मेज पर कागज रक्खा झुक झुक कर सबने एक साथ

उस कागज को देख चेहरे तमक उठे—एक साथ सब ने दस्त-खत किये। कागज पर हर एक साँस जैसे बोल रही थी! काँप कर तेजी से चलते हुए कलमों से युद्ध की चिनगारियाँ निकली पड़ रहीं थीं! भीषण हतप्रभ आवेश उस समय उन बूढ़े झुर्रियों-दार चेहरों पर परिलक्षित हो रहा था और वह राजदूत—उसका चेहरा भी स्वाभिमान से उठा था ऊपर को—शंकित सा, उस मौन में भी वे तेजी से चलती हुई कलमें सब कुछ कह गईं। उसने सब कुछ सुन लिया जैसे—

"सम्बन्ध विच्छेद"—

उसके मोटे ओवर कोट के ऊपर भी कागज लेते हुए उसके दिल की धड़कन दृष्टिगोचर हो रही थी।

"पासपोर्ट"—

दूसरे ही क्षण पासपोर्ट उसके हाथ में था। काँपते हाथों से उसे झोलियों में ठूँस कर सीना तान कर अभिवादन कर वह चल पड़ा—

सीढ़ियों से उतरते हुए उसके झटके से बढ़ते हुए पाँव, जैसे दुनिया आज उन पैरों की ठोकर पर हो—

आधे ही मिनिट में सैकड़ों कैमरे खटक उठे मोटर तेजी से भीड़ चीर कर निकल गई! दूसरे ही क्षण—

एक सन्नाटे के साथ लोगों ने रेडियो लाऊड स्पीकरों से आवाज सुनी—

"युद्ध-युद्ध घोषणा राष्ट्र ने आजादी के लिए जंग छेड़ दी है"—

८

जन समूह में हलचल मची अस्पष्ट कोलाहल—और सनसनाहट, चेहरों पर रण लालसा का विकृत रूप ! तरह तरह के नारे व्योम मंडल में गूँज रहे थे—

कुछ ही मिनिट पश्चात् दरवाजे से मन्त्रिगण निकल कर बाहर आ रहे थे। चेहरे पर निश्चय की कठोर रेखा जन समूह आन्दोलित होना पुकार हिप् हिप् हुर्रे—"

"गाड सेव दी किंग"—

मोटर साइकिलों पर सवार सदेश वाहक छूट पड़े चारों ओर तूफान की तरह—और सेनाएँ गतिशील हो कर मार्च कर रहीं थीं—सड़कों पर मोटे मोटे शीर्षकों में छपे अखबार के प्रथम पृष्ठ पर—"जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा, आजादी की रक्षा के लिए हथियार उठा लिए"—

और इन्हीं लाइनों को दुहराते हुए हाकर दौड़ रहे थे—सड़कों चौरास्तों होटलों ट्रामों और बस्ती में लोग चलते फिरते एक अवर्णनीय आवेश के साथ दुहरा रहे थे—

"युद्ध घोषणा"—

क्षण भर के लिए अखबार सम्हाले उनके हाथ सुन्न से स्थिर रह जाते हैं—

+ + +

आह्वान !

आह्वान !!

चहुँ ओर रणनिमन्त्रण की गूंजती आवाजें !

सम्राटों के सन्देश, डिक्टेटरों की आज्ञायें बिजली की तरह फैल रही थीं रेडियो लाउड स्पीकरों से। सिनेमा, सड़कों, चौरास्तों पर आजादी की अविराम पुकार गूंज रही थी।

मोटे मोटे अक्षरों में समाचार पत्र सचित्र सन्देश सुना रहे थे। लोग खाते पीते चलते फिरते वही लाइने दुहरा रहे थे, भय, आतंक से भरे हुए आवेशपूर्ण हृदय किए। पत्नी और बच्चों के चेहरे निहारते हुए। जो अभी सुषुप्ति का सा अनुभव कर चहक रहे थे—अब शान्त गम्भीर हथेली पर ठुड्ढी रखे चिन्तामग्न !

और इस आह्वान की अविश्रान्त पुकार से प्रभावित हो, दानवी माया में मूर्छित से सुध खोये, सैकड़ों, सहस्रों और लक्षों की संख्या में—नौजवान, अमीर, गरीब, भूखे, भिखमंगे, चित्रकार, कलाकार, वैज्ञानिक राष्ट्र के होनहार युद्ध के ज्वालामुखी की ओर बढ़ रहे थे !—

भरती दफ्तर की खिड़की पर संख्याहीन, नर मुण्ड, उमड़ रहे थे, हैटों में नंगे सिर काली पीली टोपियों में—लम्बी लम्बी दूर तक फैली हुई कतारें—कतारें—अविश्रान्त पागल से वज्रघोष करते हुए, आजादी का आह्वान !

कुछ ही देर पश्चात् वे मौत के परकालों के रूप में, मार्च करते दिखाई देते, सड़कों और गलियों में लम्बे चौड़े पार्कों मैदानों में, मदोन्मत्त पागल से आजादी के दीवाने—जिनके

वक्ष माताओं, पत्नी और प्रेमिकाओं, पुत्रों, भाई और बहिनों के आँसुओं से भीगे हैं—मार्च करते दिखाई देते हैं—क्रूर विध्वंसक लालसायें लिये।

वक्षस्थल सज्जित हैं विध्वंसकारी शस्त्रों और अस्त्रों से भरे हुए होटलों रेस्तरों नाचघर सिनेमाघर और थियेटरों पागल कुत्तों की तरह अन्तिमबार जीवन की शेष वासनायें बुझाने के लिये।

और.....

चारों ओर गूंजती हुई युद्ध संगीत बैन्डों की ध्वनि के साथ विदाई का गीत गाती हुई फौजें अग्रसर रणक्षेत्रों की ओर, रेलवे स्टेशन पर एकत्रित जन समूह सैनिकों से लदी हुई ट्रेनें चीखें मार मार कर प्लेटफार्म छोड़ती हुई ट्रेनें और उसी चीख के साथ वृद्ध माताओं के बूढ़े पिताओं सुकुमार बहिनों और भोले बच्चों के निकलते हुए आँसू प्लेटफार्म पर टप टप, टप टप।

खिड़कियों से सिर निकाले रूमाल हिला हिला कर विदा लेते हुए सैनिक माताओं, बच्चों से पत्नी और प्रेमिकाओं से अन्तिम विदा!

उसी प्रकार—

समुद्रतट को छूते हुए बन्दरगाह पर ऊँची ऊँची जेटियों पर विदाई के गूँजते हुए करुण स्वर—जहाज की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, सामान के बोझ से लदे हुए बच्चों के, पत्नी और प्रेमिकाओं का अन्तिम चुम्बन विदा लेते सैनिक बार बार मुँह

फेर कर लाचारी से निहारते हुए चेहरों पर युद्ध के बादलों की करुण छाया।

जहाज की डेक और खिड़कियों से तट तक असंख्य करुण नेत्रों का बँधा तार—

जहाज के भोंपू का भों-भों सा चीत्कार, हिलती हुई झंडियाँ रूमाल अस्फुट चीखें ऊपर और नीचे चारों ओर—हिलते हुए असंख्य सुकुमार कोमल सुहाग भरे हाथ टपटपाते आँसू—आँखों के खारे पानी का समुद्र के सारे पानी से अपूर्व सम्मिलन—

और ऊपर जहाज के चोंगे का उठता हुआ काला धूम्र के बादलों में लय हो कर गहरा अंचल फैलाये था।

\+ \+ \+

युद्ध के विप्लवी बादलों की छाया में वह विशाल शहर आतंकित सा विपत्ति का मारा सा, रक्षा के अनन्त प्रयास में जैसे लय हो जाना चाहता था—

नर नारी वृद्ध और बाधक इधर उधर व्याकुल, रक्षा के प्रयास पागलों की तरह काम कर रहे थे—उनके हृदय प्रत्येक युद्ध के बादलों की अशान्त घड़बड़ाहट में प्रतिक्षण स्पंदित हो रहे थे—उसी स्पंदन को लिए हुए अकेली औरतें अपने विलास-महों का कीमती सामान बटोर रही थीं, रक्षा के लिए ! हर एक चीज से जैसे उन्हें मोह है लेकिन मकान खाली किये जा रहे थे—दूसरे ही क्षण बड़े बड़े विलास भवन, शयनागार,

आफिस छूँछे भुतहे मकानों से नंगे खड़े थे·····और फिर हजारों और लाखों की सख्या में रेत के बोरों से घेरे जा रहे थे, अब वह वृद्ध औरत कमर पर रेत के बोरे लादे मकान को तोप देने का सगर प्रयास कर रही है! अपनी बुढ़ापे की शक्ति समेट कर उसके नेत्रों में भविष्य के शंकाकुल चित्र नाच रहे हैं। कमर पर हाथ रक्खे मुश्किल से सम्हाले बार बार आकाश की ओर देखती है·····

हाय यह क्या?

सब कहाँ

मेरा जवान बेटा—मेरा पति—

मैं इस प्राणहीन मकान की रक्षा कर रही हूँ। गलते हुए प्राण आँखों में आँसू·····

\+ \+ \+

लाखों प्राणी गतिशील नगर की रक्षा में खाइयों-खन्दियों में सड़कों पर मकानों में गतिशील लाखों पाँव इधर-उधर, अशान्त वेग से भरे हुए·····।

बड़े पार्कों निर्जन स्थलों हजारों की संख्या कुदाड़ी और फावड़ा लिए नागरिक रक्षा के लिए खाइयाँ खोदते—टोकरियाँ मिट्टी और गारे की टोकरियाँ लादे हुए कीचड़ से सने हुए, अस्पताल जिनके चेहरे पाउडर से चमकते थे कल तक—

काँटों के तारों और झाड़ झंखाड़ों में उलझे हुए कोमल हाथ, छलनी हथेलियों, चिथे हुए कपड़े, लेकिन सब गति शील।

यंत्र संचालित से लाखों हाथ खाइयाँ खोद रहे थे, सड़कों पर हवाई हमलों के निशानात खोद रहे थे। काँटों में उलझ रहे थे·····! बड़े लोहे के ठेलों और मोटरों को ढकेलते हुए व्यस्त निर्माण में रक्षा प्राचीरों के·····

नगर के अंचल से सागर के छोर तक चारों ओर बिखरे हुए नागरिक सिर छिपाये झाड़ियों में राजपथ सड़कों पर, उद्यान और बगीचों में। अनन्त गति से कार्यशील।

+ + +

जहाज की जेटी पर सख्याहीन छोटे छोटे बच्चे अपनी आँखें फाड़े बिछुड़ रहे हैं माताओं से। अन्तिम बार माताएं उन्हें आँसू में आँसू भरे दूध पिलाती हैं। मुँह चूम चूम कर उन्हें भाग्य के हाथ में सौंपते हुए जहाज पर चढ़ा रही हैं वे भोले से जिगर के टुकड़े हजारों और लाखों की आशायें बच्चे अबोध बच्चे हाथ में खिलौना लिए बगल में दूध की शीशी लटकाए तैयार हैं अनन्त यात्रा के पथ पर—गले में अपने माता पिता के नाम और नम्बर से अंकित कार्ड भर लटकाए—

बस आज उन अबलाओं का मातृत्व जैसे सीमित है। उन कार्डों तक·····

भोली भोली आँखों से जहाजों में भरे हुए जा रहे हैं। माताएं, संसार की माताएं, राष्ट्र की माताएं, जिनकी आत्माएं उस लौह पोत के पर्दों से टकरा रहीं हैं।

सामने यात्रा का अनन्त सागर पानी को चीरता हुआ

गतिशील डगमगाता जल पोत किनारे पर खड़ी माताओं के जहाज का पीछा करते हुए असंख्य नये हिलते हुए हाथ आँसू सम्हाले क्या पता कौन जाने लम्बा पथ समुद्री यात्रा भीषण भीमकाय युद्ध पोत—अपनी तोपों के मुँह फैलाये मँडरा रहे हैं—कौन जाने क्या हो—भयकर आशंकाओं से काँपते जिनके हृदय जहाज की जेटी पर—

पलायन, महापलायन,

प्राणों का मोह, भय से आतंकित एकत्रित जनसमूह, छोटे छोटे निरीह निस्सहाय परिवार अपनी छोटी सी गिरस्ती समेटे आकुल पाने को आश्रय दुनियाँ के किसी छोर में जिनकी पूँजी संचित है चन्द पेन्सों में - लक्ष्य हीन—पति लाचार बैठा हुआ अपने फटे सूट में सड़कों पर मँड़राती लम्बी लैन डोरियाँ—स्त्री और पुरुषों भूख प्यास और भय से बिलबिलाते बच्चों को।

लारी और ठेलों पर छकड़ों बैलगाड़ियों पर सिमट कर लदी है गृहस्थी जिनकी। कोई साइकिलों पर ही सामान बाँधे, बच्चे को हवा गाड़ी में बिठा कर उसे साइकिल से बाँधे स्त्री सहित नगे पाँव पैर घसीटते चले जा रहे हैं, रक्षा की खोज में खाना बदोशों का जैसे मेला सा सड़कों से निकल रहा हो।

उसी प्रकार रेलवे प्लेटफार्मों पर अँटा हुआ जन समूह भय से व्याकुल सा और औरतों की भरी आवाजें बच्चों का क्रन्दन और पुरुषों का घोर रव सब कुछ जैसे उस विशाल स्टेशन की छतें फाड़े डाल रहा है।

सारा नगर सिमिट कर एकत्रित है। एक भाव सब के चेहरों युद्ध प्रलयकारी मँडराते बादल, जिनकी अशान्त धड़-धड़ाहट उनके दिलों में बज रही है।

झपटे पड़ रहे हैं ट्रेनों पर जो दस-दस पाँच-पाँच मिनिट पर छूट रही हैं। रेल के डिब्बों ऊपर नीचे बर्थों पर बर्थों के नीचे खिड़कियों संडासों छतों पर खिड़की से लटके हुए लोग—जैसे मधुमक्खियों का आश्रय ले ट्रेनें चल देती हैं, अज्ञात दिशा में वे बढ़े जाते हैं लक्ष्यहीन भटके से आश्रय की खोज में—बार प्राण जिनके सूखे जा रहे हैं दुर्घटनाओं की आशंका से फिर मौत के खटोलों में झूलते वे बढ़े जाते हैं—प्राणों का मोह लिये आस पास मोर्चों को निहारते चारो ओर कदम कदम पर लगे हुए मोर्चे रेंगते हुए टैन्क जंगलों में पहाड़ों मैदानों मुंह बाये खड़ी हुई भीमकाय तोपें कैसी प्रवंचना ?

× × ×

विश्व की उमड़ती हुई पूंजी—

गरीबों की अंटियों से, अमीरों की तिजोड़ियों से, बैन्कों से, राष्ट्र के खजाना से, पौन्डों, डालरों, गिन्नियों, चाँदी और सोने के चमकदार सिक्कों में !

उमड़ रही थी—इधर से उधर ! युद्ध के कोषों से झोंकी जा रही थी कल कारखानों में, फैक्ट्रियों में बड़ी बड़ी भीमकाय भट्ठियों में—चारों ओर पूँजी-पूँजी की पुकार—रेडियो पर सिनेमाओं में होटल थियेटरों—सब जगह पूँजी धनवान के

लिए पुकार—बचत करो, बचत करो, पेट काटो रुपया दो—रुपया·····रुपया—पूँजी·····

उस बड़े पार्क में लाशों नरमुंडों का लगा हुआ जमघट वह महान राष्ट्र रक्षक भाग्य विधाता ऊँचे मंच से पुकार रहा था—

'सभ्यता खतरे में है, राष्ट्र का जीवन खतरे में है, नागरिकता का गला घुंट रहा है ये मौत के परकाले हवाई जहाज महल अटारियाँ ढहा देंगे आग लगा देंगे ये टैंक रौंद डालेंगे तुम्हारे उद्यान सड़कें निवास स्थान पार्क सब कुछ हाँ सब कुछ मिट जायगा सब कुछ ढह जायेगा, बरसों का चरम विकास बरसों की उन्नति ऊँची ऊँची कीर्त की मीनारें रक्षा के लिये पैसा दो पैसा, सोना चाँदी जेवरात, अन्न सब कुछ दो हमें पूँजी चाहिये पूँजी नहीं तो मिट जाओगे—' ठीक उसी प्रकार मदारी किसी बच्चे के गले पर छुरी रख कर दर्शकों से पैसा माँगता है।

और उसकी आवाज पर अपील पर काँपते हुए नागरिक स्टेज पर बरसाते हुये सोने और चाँदी के सिक्के कीमती जेवरात, सुन्दरियों के गले के हार नगदार अंगूठियाँ, सुनहरी चैनें सब कुछ हाँ सब कुछ भेंट चढ़ रहा था नेता की पुकार पर युद्ध के कोष में पूंजी पूँजी की अविश्रान्त पुकार।

× × ×

और उस पूँजी से, लम्बे चौड़े विशाल कल कारखाने चल रहे थे 'खट-खट, खटा-खट', बड़ी बड़ी खरादें घूम रही थीं, भीमकाय भट्टियाँ जल रही थीं अपनी पूर्ण शक्ति से।

लोहे के दानवों से मानवों के तन की हाड़।

ऊँची ऊँची चिमनियों से धू-धू कर उड़ता हुआ, पतनशील, रणोन्मत्त मानवी शक्ति का काला धूम्र.....।

उन धधकती फैक्ट्रियों के घेरे में संगीतों की छाया में लोहे की मशीनों पर कार्यशील मजदूरों सहस्रों हाथ, आँखों के कोमल सुकुमार, बुड्ढे भिखियों के कठोर काले हाथ, शिथिल से अविश्रान्त व्यस्त निर्माण में—उनके चारों ओर मशीनों की कर्ण में ही ध्वनि गूँज, लेकिन वे बहरे बने आँखें गड़ाये जूझ रहे हैं—कमर तोड़ रात दिन चौबीस घण्टे।

उनके हाथों की प्रत्येक हरकत में विनाश की सृजन शक्ति, फैक्ट्रियों के दरवाजों से निकलते हुए हजारों की संख्या में बम-वर्षक वायुयान, बड़े लोह टैंक, तोपें मशीन गनें तारपीडोज, युद्ध पोत—

उनकी रग रग में दानवी शक्ति का संचार, जिसके बल पर उनके हाथ चल रहे थे बड़ी मशीनों पर, खरादों पर, उनका खून, और पसीना भट्टियों के शीलों में जल रहा था, छन-छन् कर। छिलते हुए हाथ और झिझुड़ती हुई हड्डियाँ औरतों और बच्चों की वृद्धों नौजवानों की जीवित आहुतियाँ चढ़ रहीं थीं—और वे दानवी मशीनें उनको जीवित चबा रही थीं, 'कट-कट'

वे घिस रहे थे, पिस रहे थे, मशीनों में उलझे हुए और उस सर्व हारा फैक्ट्री की चिमनी से उनकी शक्ति काला धूम्र और वे निर्जीव पुतले—

लोहे के दानवों से मानवों के तन की होड़ !

सिर पर संगीन ताने हुए संतरी दानवी रणोन्मत्त शक्ति के प्रतिरूप जैसे वे हर खाते में बूट बूट पटक पटक मार्च करते हुए कह रहे थे—

"रुको नहीं, डटे रहो" (लैफ्ट राइट)

"खटपट खटपट"

"और जोर से, और जोर से"

"खटपट-खटपट"

"राइट अबाऊट टर्न"

"चुप रहो मुँह मत खोल"

"खटपट-खटपट"

"रुको नहीं डटे रहो"

और वे उन संगीनधारी संतरियों की छाया में बिना आँख उठाये, गतिशील थे—कोई शक्ति उन्हें पागल बना कर आत्माहुति चढ़ाने को विद्रोह की आग में जल जाने को बाध्य कर रही थी—और वे काम कर रहे थे—संगीनें जैसे उनकी छाती पर अड़ी उन्हें बाध्य कर रही थीं।

फैक्ट्रियाँ चल रहीं थीं, 'खट-खट, खटा-खट।'

+ + +

'वार आफिसों' की बड़ी बड़ी इमारतों में युद्ध के बादलों की धूप छाँह—

चारों ओर संगीन तान कर सतर्क भाव से टहलते हुए संतरी—

चमचमाती मोटरों की लम्बी कतार द्वार के सामने आस पास लुक छिप कर विचरते जासूसों की ताक झाँक, आँखों में प्रतिहिंसा, विश्वासघात। कुचक्र के ताने बाने बिनते हुए—

चिकने चमकदार फर्श पर इधर उधर गतिशील मन्त्रियों के अधिकारी अफसरों, फौजी कमान्डरों के लम्बे लम्बे भारी बूँट, टाईपिस्ट लड़कियों के ऊँचे-ऊँचे एड़ियों पर उठे हुए गोरे-गोरे चपरासियों परिचित फिसलते हुए संख्याहीन पग—

गैलरियों में आपस की फुसफुसाहट, दीवालों से भी चुराते हुई संदेह भरी आँखें।

बन्द कमरों से आती हुई टाइपरायटरों की किटकिटाहट दीवालों के भीतर गूंजती हुई अस्पष्ट ध्वनियाँ—

कुर्सियों के घेरे में सिमटे हुए सैकड़ों क्लर्क युद्ध की मशीनरी के पुर्जे जैसे वे अपनी कुर्सियों पर फिट कर दिये गये हों और 'फिट' दम साधे बैठे हैं, कानों पर कनटोपे चढ़ाये, हजारों मील दूर से युद्ध की आहट लेते हुए क्षण प्रतिक्षण बदलते हुए उनके चेहरे के रंग, अलक्षित स्वयं संचालित सी कागज के पन्नों पर चलती हुई उनकी पेन्सिलें—

दूसरे कमरे में कागज की फायलों से घिरे हुये अधिकारी-

गण नये नये मोर्चों के दीवालों पर टंगे हुए विशाल नक्शे लम्बी युद्ध योजनाओं के कागजी ढेर उन नक्शों पर घूमती हुई आक्रमण स्थलों पर निशान लगाती हुई पेन्सिलें मोर्चे का हिसाब किताब कागजी मोर्चाबन्दी पर आश्रित मनसूबे युद्ध संचालन का भार सम्हाले।

और उस गुप्त मंत्रणागृह में लम्बी चौड़ी टेबिल के चारों ओर लगी हुई कुर्सियों पर बैठे हुए मन्त्रिगण वैज्ञानिक, युद्ध के विशेषज्ञ, अनुभवी कमान्डर! मेजों पर बिखरे हुए गुप्त कागजातों पर आँखें गड़ाये युद्ध के घात प्रतिघातों से आहत से व्यस्त मनसूबों में, नये षड्यन्त्रों, विनाशकारी साधनों के अधिक से अधिक सैनिकों के खून के प्यासे भेड़िये।

अपनी विनाशकारी शक्ति पर छाती फुलाये, मैडिलों को लटकाए तैयार हैं आहुति चढ़ाने को सैनिकों की धन सम्पत्ति की। पुत्र विहीन माताओं की, भग्न सिन्दूर अबलाओं की, और अनाथ बच्चों की आहें जिनके फौलादी सीनों से टकराकर लौट आती हैं—

"वह मोटी ठुड्डी वाला प्रधान बतला रहा था हमने ग्रीस में १॥ लाख सेना कटा डाली फिर भी हम विजयी हैं"—उसकी छाती गर्व से फूल रही थी।

मानवों के जीवन का मूल्य जहाँ अंकित है कागज के पन्नों पर।

और उन कमरों से गूँजती हुई आवाजें, आदेश और

आज्ञायें, आग की तरह फैंकने वाले गढ़न्त समाचार, तार टेलीफोनों पर रेडियो की लहरों पर दौड़ती हुई भर्रायी आवाजें सहस्रों और लक्षों की जानों का उलट फेर।

× × ×

सहस्रों की संख्या में आश्रयहीन नागरिक इधर उधर भागते भटकते, विकल आतंकित विनाश के चित्रों को निहारते हुए जिनके पागल नेत्र। औरतों को साथ लिए बच्चों की उँगली पकड़े, भूखे अधनंगे राजपथ सड़कों पर अपने नौनिहालों की बलि दे कर, खंडहरों से पटी हुई टूटी फूटी इमारतों को निहारते हुए हताश साधन हीन।

होटलों के दरवाजों पर लार टपकाते भूखे बच्चे औरतें।

लेकिन वहाँ क्या रक्खा है खाने को, आज उनके पेट की रोटियाँ लगी हैं आज सैनिकों की क्षुधा बुझाने को।

मोटरों, रेलों, और ठेलों में, विमानों जलपोतों में लदी हुई भोजन सामग्री चली जा रही है रणक्षेत्रों की ओर—लगातार।

सूखी डबल रोटियाँ चबाते, सड़े गले फलों से पेट बुझाते नागरिक सड़कों फुटपाथों पर टूटे खंडहरों के कानों में पड़े हुए आश्रय हीन! आँसू भरे हुए नेत्रों से युद्ध के विप्लवी बादलों को निहारते!

और फिर भोंपू का घोर कर्कश रव चारों ओर घुप्प अन्धकार—मौत के परकाले वायुयानों की भनभनाहट भागते हुए इधर उधर, लड़खड़ाते लम्बी लैनडोरियाँ औरतों बच्चों

और बूटों को लड़खड़ाते, ठोकरें खाते उनके पग गिरते पड़ते आश्रय की खोज में दम साधे—

बार्डरों की सीढ़ियों और भोंपुओं की अविश्रान्त चेतावनी हवा में उड़ते हुए होश ! अँधेरे में भागते हुए लाखों नंगे पैर —

और उन रक्षा-गृहों में एक ऊपर एक ढिले हुए छाती से टाँगें अड़ाये। घुटनों में मुंह दिये, औरतें छाती से बच्चों को चिपकाये ! विप्लवकारी विध्वंस की आहट लेते हुए, बैठे हैं। बच्चों की फटी हुई विस्मय भरी आँखों पर छाया हुआ विस्मय भरा चमत्कार ! बमों के विस्फोट से क्षण क्षण पर गूंजती हुई चीखें !

उष्ण स्वासें भर रही थीं तहखानों में और घुटती हुई श्वांस की गति।

कोई-कोई मूर्छित से—कोई अर्धमूर्छित से बिलबिलाते तहखानों में मानवी कीड़े अपनी ही सृष्टि का अभिशाप बन।

ऊपर काले घुप्प अन्धकार में बम वर्षक विमानों का वज्ररोर—टिड्डियों से मडराते वायुयान ! सूर्य की किरणों के समान घूमती बैटरियों के प्रकाश में चमक उठने वाले उनके काले-काले डैने—बरसते हुए आग्नेय बम पलीते से फूटते हुए विशाल इमारतों अट्टालिकाओं सड़कों और रेलवे स्टेशनों पर, अर्राकर गिरते भवन, हिलती हुई दीवारें फटता हुआ पृथ्वी का हृदय।

इधर उधर चारों ओर मकानों की खिड़कियों दरवाजों से छतों को फोड़कर लपलपाती अग्नि की ज्वालायें जलते हुए टूट

कर गिरते दरवाजे, बड़े भीमकाय स्तम्भ कलश सब कुछ भूमिसात। सारा नगर ज्वालामय।

जनहीन सड़कों पर, ज्वालाओं के प्रकाश में राह टटोलते इधर उधर भागते हुये प्रहरी फायर ब्रिगेड रौंदते कुचलते बिखरी हुई धन सम्पत्ति को टकराते खंडहरों से मुर्दों से लाशों से।

ऊँची सीढ़ियों पर टंगे हुये हाथ में पाइप ले अग्नि ज्वालाओं से जूझते झुलसते अग्नि रक्षक लेकिन ये सर्वभक्षी ज्वालायें कुछ समेट रही थीं अपने उदर में। मानवी सृष्टि की क्षुधित अग्नि ज्वालायें।

लेकिन वह अविश्रान्त अग्निवर्षा लेकिन वे अग्नि बम तोड़ते फोड़ते भवनों को महलों गिरजाघर मन्दिरों को, मस्जिदों को, प्रार्थना समाजों को, गिरजों में जलती बाइबिलें धर्म ग्रन्थ, ऐतिहासिक सम्पत्ति, तसवीरें सब कुछ खंड खंड टूक टूक क्रास चिन्ह शान्ति उखड़ते हुए झंडे, जलती हुई पताकाएं बमों की ज्वाला में—

और उन अस्पतालों में टूटे पलंग पर क्षतविक्षत घायलों का चीत्कार दम तोड़ते—टूटी हुई शीशियाँ, बिखरे हुए औजार! बिलबिलाते निस्सहाय घायल।

'धमाक्-धमाक्' विमानभेदी तोपों के आकाश में फटते हुए गोले! असंख्य टूटते हुए तारों से बमवर्षक वायुयान, ज्वालामय भूमियान! साथ ही साथ जीवन का मोह छोड़ चक्करी से घूमते वायुयान चालक, ऊपर ही गोलियों का शिकार

बन, बरसती हुई उनकी क्षत विक्षत लाशें सड़कों और गलियों में मकानों की छतों पर, सागर की लहरों पर पटी हुई लाशें खंडहरों के गर्त में, चौरास्तों पर लोटती तड़पती औरतें बच्चों की, वृद्ध नौजवानों की लाशें, शत्रुओं कन्धे से कन्धा भिड़ाये पड़ी हुई शान्त ! चारों ओर क्रन्दन भरा चीत्कार ! फटी हुई आँखों में मृत्यु की छाया, विकृत हो ऊपर मुँह किये युद्ध के बादलों को निहारती हुई लाशें !!

\+ \+ \+

सहस्रों मील लम्बे चौड़े युद्ध के मैदानों में—
सेनाओं के फौलादी मोर्चे !

सैनिकों की टोलियाँ, खाइयों में छिपी हुई गड्ढों और खड्डों में, झाड़ियों के झुरमुटों में, चट्टानों की ओट में इधर उधर चारों ओर सहस्रों की संख्या में सैनिकों के हिलते हुए काले फौलादी टोप !

बन्दूकों पर हाथ रक्खे, मशीनों पर काम करते, तोपों के मुँह उठाये—सैनिक !—

हाँ सैनिक ! रेलों और ठेलों में, टैन्कों में, आर्मर्ड कारों पर, साइकिलों पर, घोड़ों की पीठों पर, नंगे पाँव ! अग्रसर सैनिक—पागल-से, खून के प्यासे, मौत के परकाले सैनिक, रेलों और मोटरों पर, साइकिलों, ठेलों पर घोड़ों की पीठों पर, टैन्कों में पैदल इधर उधर मंडराते हुए सैनिक। सज्जित हैं बन्दूकों बमों से मशीन गनों, तोप खानों से जहरीली गैसों आदि विध्वंस के साधनों से लदे हुए—

शत्रु पर बम ढहाने, माताओं की गोद में आग लगाने, अबलाओं बच्चों पर बम ढहाने, तूफानी युद्ध के गीतों को गाते हुए सहस्रों और लाखों की संख्या में—रौंदते हुए मेदिनी के बल को तोड़ते फोड़ते चट्टानों को झाड़ झंखाड़ों को, पार कर नदी और सागरों को, पर्वत पहाड़ों को, ऊँची नीची घाटियों को रणक्षेत्रों में अग्रसर सैनिक !

\+ \+ \+

रण भूमि के उस कोने पर—

खाइयों मोर्चेबन्दयों में दबी हुई सैन्य शक्ति, ऊपर से महाशान्ति भेड़िये से छिपे हुए सैनिक प्रतीक्षा में छिपे हुए झाड़ियों में, झुरमुटों से झाँकते हुए तोपों के, विमान भेदी तोपों के उठे हुए मुख दम साधे शान्त हैं प्रतीक्षा में—

टेलीफान और वायरलैस के इयरफोन कानों पर लगाये आहट लेते हुए, दूरबीनों पर नेत्र गड़ाये दूर तक निहारते अधिकारी—

सर्व प्रथम रेडियो पर बैठे हुए अधिकारी का हाथ का लाल रूमाल हिल पड़ा—बिजली की तेजी टैलीफोन तारों पर दौड़ गई आज्ञायें आदेश, चेतावनी बजती हुई सीटियां।

शत्रु का आक्रमण—वायुयानों की भनभनाहट—का चीख स्वर आसमान के किसी कोने से भाग दौड़ सब सतर्क !

चारों ओर पहियों पर घूमती हुई दूरबीनें शत्रु की खोज में—मीलों तक निहारती—निरीक्षक के संकेत पर 'भनभनाहट' और तेज घोर रव-तोपों के अग्नि मुख धधक उठे, मशीन गन

पड़ी गोलियों की बौछारों में उन्हीं के पीछे काटों और पत्थरों में लेटे हुए लिथुडने सैनिक—

'धाँय धाँय'—तोपों की गर्जना, विमानभेदी तोपों के आकाश में घूमते हुए अग्नि मुख—

'अर्राहट भनभनाहट टिड्डियों से भीमकाय विस्फोटक बम वर्षा करते हुए अग्रसर आँधी से'—

सामने से बढ़ती हुई आग उगलते टैंकों की कतार—तोड़ती फाड़ती वृक्षों को, ऊँची नीची खाइयों को साफ कर, छोटे नालों और गहरे तालाबों को पार कर कीचड़ उलीचती, पृथ्वी का हृदय चीरती अग्रसर! रौंदती हुई लाशों का तोपों वमों और मोरचों का लोहे के दानवों की विशाल पाँत—

जान हथेली पर रख कर भागते हुए निस्सहाय लँगड़ाते, गिरते पड़ते घायल सैनिक होश खोये। उनके पैर अपनी ही छुपाई सुरंगों पर पड़ रहे हैं उड़ रही हैं धज्जियाँ उनकी।

और फिर भरभराती आर्मर्ड कारें फटफटाती मोटर साइकिलों पर सवार सैनिक! भागते हुए निस्सहाय सैनिकों की धर पकड़ विजय के दीवाने शत्रु के बन्दी विजेता सिपाहियों कमान्डरों के सामने सिर झुकाए, हाथ बाँधे, घुटना टेके।

और फिर कुछ क्षण बाद—

मौन, शान्त मुर्दा रणस्थली में एम्बुलैन्स कारों की दौड़ धूप! लाशों के ढेरों, लाशों में एक हाथ, घायलों को ढूढ़ती, सलाशती खाइयों खन्दकों में झुरमुटों में, वृक्षों की ओट में।

एम्बुलैन्स लारियों पर आपस में टकराते हुए घायल

सैनिकों के सिर, अनेकों मार्ग ही में दम तोड़ते अनेकों आँखों से बहती हुई अश्रुधार, माँ की बच्चों की पत्नियों की भाई और बान्धवों की अन्तिम याद ! आत्मग्लानि पश्चात्ताप। आँखें युद्ध के बादलों की पीती सी भगवन् इन्हें शान्त कर। प्रवाद के तूफान से काले काले सिर पर—

तोपों के फटते हुए गोले, ऊपर आकाश में भीषण विस्फोट धाँय धाँय सघन बादलों सा धूम छादित आसमान काला काला—बरसते हुए बम—और उसी तरह पैराशूटों से जान हथेली पर रक्खे छतरी धारी सैनिक विनाश के साधनों से लदे हुए—

छतरीधारी सैनिकों की बरसात ऊपर और नीचे से भीषण अग्नियुद्ध, बीच ही में टकराकर फटते हुए बम और तोपों के गोले।

ओलों सी बरसती हुई सैनिकों की लाशें—भूमि पर गिरते हुए सैनिकों लाशों पर, खंड खंड मोर्चों पर बरसती हुई लाशें।

जलते हुए, टूट कर गिरते हुए वायुयान खंड-खंड भूमिसात।

और उधर मोर्चों पर जलती हुई ज्वालाएँ फटते हुए तारपीडो, उठती हुई लपटों में झुलसते हुए सैनिक, विस्फोटों के साथ आकाश में उड़ती हुई धज्जियाँ ! विजय का स्वप्न भर आँखों में सदा को मौन सैनिक, हाथ में बन्दूक साधे लोप का मुँह उठाये ही बन गये शिकार जो। लड़खड़ा गिरती हुई लाशों

पर लाशें—तोपों के फूटे मुँह—धुंधवाती मशीनगनें विमान भेदी तोपें—सब कुछ चिर थिर।

आकाश में मँडराते हुए वायुयान, भागते हुए सैनिकों का पीछा कर बम पटकते—

सीमाहीन सागर की छाती पर दौड़ते हुए जलपोत, युद्ध पोत विध्वंसक, गर्भ को चीरती हुई जलचर पनडुब्बियाँ, सजी हुई अस्त्रों और शस्त्रों से।

उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक, अटलान्टिक, प्रशान्त और भूमध्य सागर में!

इधर उधर बिखरे हुए समुद्री काफिले लदे हुए भोजन सामग्री से, शस्त्र और अस्त्रों से भीमकाय तोपों से, पहरे में घिरे हुए विध्वंसक तोपों के। आकाश में छाये हैं, चिमिनियों के धुएँ काले बादल! चलते फिरते समुद्री किलों से, जिन पर बजते हुए फौजी बैन्डों का स्वर शान्त सागर की लहरों पर तैरता है।

रात्रि दिवस गतिशील!

सशंकित से आस पास आहट लेते दूरबीनों के सहारे समुद्र पथ पर दृष्टि बिछाये! कदम कदम पर खतरा सुरंगों, के बिछे हुए अदृश्य जाल में अचानक ही टकरा कर टूटते हैं, भीषण विस्फोट फौलादी पैंदा दो टूक—दूसरे ही क्षण मौत की गोदी में झूलते वे यात्री सैनिक दिखाई देते हैं।

धूप-धूप, कूद-फाँद धीरे धीरे जल मग्नहोता हुआ विशाल जल पोत—

डेक पर से लटकती हुई प्राण रक्षक डोंगियाँ डगमगाती

समुद्री थपेड़ों में आ। उन पर असहाय चीखते चिल्लाते सैनिक मौत की गोद में झूला सा झूलते हुए, निस्सहाय! शक्ति भर डाँडों को खेते हुए!

वह लगा तारपीडो, डूबता हुआ युद्धपोत टूक टूक सागर की वक्षों पर!

भीषण विस्फोट में टूट कर गिरते हुए मस्तूल, उखड़ कर आसमान में उड़ते हुए तख्ते उसी प्रकार सशरीर मल्लाह और उनकी गिरती हुई लाशें, उतराती लहरों पर! विस्फोट का उड़ता हुआ काला धूम्र!

चारों ओर से आक्रमण धर पकड़। शिकार की खोज में भटकते हुए आक्रमणकारी युद्ध पोत—आपस में तोपों की गड़-गड़ाहट, गोलाबारी ऊपर से विमानों की बम वर्षा, विस्फोट अग्निकाण्ड उठता हुआ धुआँ। धुएँ के बादलों की ओट से अविश्रान्त बौछार! गिरते हुए मस्तूल उड़ती धज्जियाँ फूटते हुए पैंदे। उठती हुई ज्वालाएँ! जैसे जलते हुए पहाड़ समुद्र की थाह लेने के लिए गोता लगा रहे हों। बड़े बड़े सहस्रों टन भार वाले युद्ध पोत खंड खंड! समुद्र की छाती पर जलती हुई चिताएँ।

लाखों करोड़ों की सम्पत्ति, अन्न रसद डूबती समुन्दरों—एक ओर भोजन के लाले पड़े! सागर के गर्भ में सड़ती हुई अन्न की ढेरियाँ! और उन्हीं में लिपटी हुई लाशें।

खंड खंड ज्वालामान युद्ध पोत, गर्मी से जिनकी उबलता है सिन्धुतीर, तप्त लाल लाल!

ऊपर मँडराते बमवर्षक वायुयान, आग उगलते हुए तोपों के धधकते हुए अग्निमुख।

फूटती सुरंगों का भीषण विस्फोट उछलता हुआ सिन्धुनीर ऊपर तक। तारपीडो फेंकती हुई समुद्र के गर्भ से जलचर पनडुब्बियाँ फाड़ती जहाजों के पेंदों को!

कहीं कहीं फँसी हुई सुरंगों के जाल में—जल समाधि लेती हुई।

मल्लाहों की लोमहर्षक मौत दम घुटकर समुद्र के गर्भ में सड़ती हुई लाशें।—हाँ लाशें, फँसी हुई जहाजों के तख्तों में मस्तूलों में सुरङ्गों जालों में, अन्न की ढेरियों में। जलमग्न विश्व की सम्पति! समुद्र के गर्भ में, हत्याकाण्ड, अग्नियुद्ध, आत्मघात और जैसे उसमें सब कुछ समेट लेने की शक्ति है।

ऊपर मँडराते हुए युद्ध के बादल—पृथ्वी की गोद में। समुद्रों जलती हुई छाती पर। नीले आसमान के धूम्रछादित अंचल में—

जिनकी प्रत्येक टकराहट में—मृत्यु का अट्टहास, लड़खड़ाते साम्राज्य—!

डगमगाते राज भवन—!

कम्पित अट्टालिकाएँ—ऊँची-ऊँची कीर्ति की मीनारें—!

महायुद्ध! महाध्वंस!! सृष्टि का अन्त!

युद्ध की चिताओं पर अन्तिम श्वास लेती हुई विश्वशान्ति!